UNIVERSAL LIBRARY
OU_182530
UNIVERSAL LIBRARY

OUP-23-4-4-69-5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83·1 C54M Accession No. H 3026

Author चौहान, मनहर.

Title मत छुओ. 1961

This book should be returned on or before the date last marked below.

मत छुओ

मनहर चौहान की कहानियां

कुरेदन	५
कुन्नो	१३
लाचार	१९
ससार की सव से सच्ची कहानी	३७
वंद दरवाजे खुली कुंडी	४४
कसवे का जानवर	५२
मत छुओ	६१
४३वां युधिष्ठिर	६८
रानी और मानी	९५
सुख की छत और जिंदगी की बारिश	१०४
बरखा	११६
नासपातियां	१३७

कला प्रकाशन

२९ई/२७ ईस्ट पटेल नगर

नई दिल्ली-१२

अखिलेश,
कला प्रकाशन,
२९ई/२७ ईस्ट पटेल नगर
नई दिल्ली-१२ द्वारा प्रकाशित

सर्वाधिकार सुरक्षित

कला पक्ष : 'ब्रश'
प्रथम संस्करण : सितंबर १९६१
मूल्य . तीन रुपए

मुद्रक :
कृष्णा प्रिंटिंग वर्क्स
१४३२, प्यारेलाल रोड,
नई दिल्ली-५

भूमिका

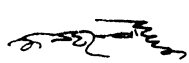

III

औरतें

बड़ा सा मकान और कुल दो औरतें—उन में प्रीत की शबनमी डोर बंध जाना जितना स्वाभाविक था, आवश्यक उस से अधिक. बड़ी देर तक बातें करतीं दोनों. बड़ी देर तक छेड़खानी करती दोनों. बड़ी देर तक सट कर बैठी रहती दोनों. और रोज उन के दिलों की बगिया में एक क्यारी प्यार और ऊग आता.

लेकिन एक बात बड़ी गलत थी—हालांकि दोनों के दिल एक थे, शारीरिक रूप से वे तीन और छह थी. उन में से एक नाटी, मोटी और थलथल—दूसरी बेहद दुबली, लम्बी और सूखी हुई. एक गोरी—दूसरी एकदम काली. एक के बाल लम्बेलम्बे और हरदम बधे—दूसरी के फैशन से कटे और हरदम खुले.

शरीर के साथ शौक, धर्म, अर्थ, पति आदि सब बातों में वे उत्तरदक्षिण थीं. एक नाइलोन की पारदर्शक साड़ी पहनती, दूसरी सूत का अपारदर्शक स्कर्ट. एक हिन्दू थी, दूसरी ईसाई. एक मकानमालकिन थी, दूसरी किराएदार. एक धन में डूबी थी, दूसरी शिकायतों में. एक का पति बूढ़ा और खूसट था, दूसरी का जवान और दिलखुश. एक का एक भी बच्चा न था, दूसरी के चार बच्चे थे.

कभीकभी वे सोचा करतीं—यदि हमारे बीच एक और औरत आ जाए तो? तो हम परस्पर जलने लगेंगी और उस तीसरी औरत से

एकदूसरी की शिकायतें करेंगी. हमारी आपसी नोचखसोट से वह तीसरी औरत गले तक आजीज आ जाएगी और वह कभी एक का पक्ष लेगी, कभी दूसरी का. कभी चुप रह जाएगी और हम दोनों की ओर आंखें झपकाएगी.

और वे सोचा करतीं—यदि हम में से कोई एक यहां से चली जाए तो? तो जो यहां अकेली बचेगी, वह बेहद उदास हो जाएगी. उस की खुराक घट जाएगी और वह छत की ओर यों ही घूरा करेगी. कोई बात पूछने पर पहले तो वह सुनेगी नहीं और दुबारा पूछने पर चौंक पड़ेगी. पति से उस के झगड़े बढ़ जाएंगे और रोज उस की रसोई खराब हो जाया करेगी.

लेकिन सूती स्कर्ट वाली पम्मी खुश थी और नाइलोनी साड़ी वाली कम्मो खुश थी—इसलिए कि उन के बिछुड़ने की सम्भावना न थी.

कई बार वे अहाते में बनी छोटी सी बगिया में चली जातीं और पूरे मकान को आंखियातीं. ओह, कितना बड़ा, कितना सुन्दर, चमकीला. और इतने बड़े मकान में केवल दो औरतें.

दिल्ली की यह जमीन थोड़े समय पहले तक बिलकुल सूनी पड़ी थी. अब यहां धड़ाधड़ नए ढंग के मकान खड़े हो रहे थे—बड़ेबड़े मकान, फैशनेबल मकान, लेकिन सूने मकान. कई मकान एकदम खाली पड़े थे—उन में रहने कोई न आया था. आवारा लोग कभीकभी उन में रात बिताते, धमाचौकड़ी करते और सुबह जाते समय खिड़कियों के कांच फोड़ देते या ऐसा ही कुछ कर देते. कुछ खाली मकानों में चौकीदार थे अवश्य, लेकिन दूर से पत्थर फेंक कर कांच तोड़ने वाले बच्चों पर उन का केवल इतना बस था कि जी भर कर उन्हें गालियां देते.

कम्मो ने यह मकान बनाबनाया खरीदा था. बल्कि खरीदा उस के पति ने था और उसे इसलिए तोहफे में दे दिया था कि वह बूढ़ा

था और उस नींद में भी भय लगा रहता था कि कम्मो उस से नाराज है. पूरे मकान मे कम्मो और पम्मी के सिवा और कोई औरत न थी. दूसरे सभी किराएदार या तो कुवारे विद्यार्थी थे या ऐसे लोग थे जिन की बीबियां कही और थी और वे यहा शादीशुदा से अधिक नौकरीशुदा थे. कई कमरे किराएदारों के इन्तजार में अभी खाली पडे थे.

एक दिन पम्मी के चार बच्चो को देख कर कम्मो के दिल मे और दिनों की तरह प्यार की नई क्यारी न ऊगी. सारा दिन वह उखड़ीउखडी रही और रोटी बनाते समय गर्म तवा उस की कलाई से छू कर लिसलिसाहट पैदा कर गया. रात को देर तक वह जागती पड़ी रही. दूसरे दिन उठते ही उस ने पति से कहा—"मुझे बच्चा चाहिए."

पति अपने गाल लटका कर भौंचक उस की ओर ताकने लगा.

उस ने कहा—"मैं किसी को गोद लेना चाहती हूं."

"ठीक है! ठीक है!"—उस का पति सहसा खुश हो कर किलक उठा. उस दिन उस ने रोज की तरह नहाने और नाश्ते के लिए तैयार होने में देर न लगाई.

पम्मी ने जब यह सुना तो कम्मो से लिपट गई.

फिर उन के बीच आठ साल का राज आ गया. वह एक जिद्दी लड़का था और इस घर का नया वातावरण उसे माफिक न आया था. यहां आ कर वह चिड़चिड़ा हो गया था और पम्मी के चार बच्चों के साथ खेलतेखेलते वह उन से झगड़ पड़ता था.

कम्मो के एक बड़े भारी अभाव की पूर्ति हो गई थी. उस को दिलासा मिल गया था और वह निश्चित हो कर पम्मी से प्यार करने लगी थी—पहले से भी गहरा प्यार, घना प्यार, रंगीन प्यार.

दिन बीतते चले. उन दोनों के बीच प्यार बढ़ता रहा बढ़ता रहा.

परन्तु प्यार के साथसाथ दोनों के भीतर एक अजीब सी कुरेदन भरती जा रही थी. कुरेदन, जो बड़ी तीखी थी और ज्यादा तीखी होती जा रही थी. कुरेदन, जिसे वे दोनों समझ न पाती थी, परस्पर कह न पाती थी. अपने में ही दोनों उलझी रहती थी. दोनों को कुछ खटकता रहता था कि कुछ ऐसा है जिसे उन्हें करना चाहिए लेकिन कर नहीं रही हैं.

कई बार वे एकदूसरी की ओर ताकती रह जातीं और बस, ताकती रह जातीं. एकदूसरी में वे पता नहीं क्या खोजतीं, जिसे न पा वे भीतर ही भीतर झुझलातीं, कुढ़तीं और समझ न पातीं कि उन्हें क्या हो गया है.

कुरेदन के साथसाथ उन के बीच प्यार भी बढ़ता जा रहा था. कई बार उन्हें लगता, प्यार करने का कोई नया तरीका उन्हें ईजाद करना होगा—इन साधारण तौरतरीकों से तो सन्तोष नहीं होता. कई बार वे बातें करती जातीं, करती जातीं, करती जातीं और सुबह रात हो जाती. कई बार वे एकदूसरी को बांहों में भर लेतीं और जी भर कर एकदूसरी को दबाती और कभी तो चूम तक लेतीं. लेकिन रोज एक गहरे असन्तोष से वे घिरती जा रही थीं. उन्हें परस्पर इतना प्यार करना था, इतना प्यार करना था कि...

कुरेदन और प्यार.

प्यार और कुरेदन.

दोनों बढ़ते जा रहे थे.

इधर राज दिनबदिन चिड़चिड़ा, जिद्दी और झगड़ालू होता जा रहा था. पम्मी के चारों बच्चे उस से तंग आ गए थे. पम्मी और कम्मो की जगह कोई और औरतें होतीं तो बच्चों को ले कर रोज उन में

सिरफुड़ौवल की नौबत आती लेकिन ये तो पम्मी और कम्मो थीं. बच्चों की शिकायतें और झगड़े कोई भी उन्हें लड़ा न पाते.

उस दिन एक अनहोनी बात हो गई.

पम्मी कम्मो के लम्बे बालों में तेल डाल कर कंघी कर रही थी. दोनों में मीठीमीठी बातें हो रही थीं. पम्मी मजाक कर रही थी—"कम्मो, तू टमाटर की तरह लाल और बैंगन की तरह मोटी है." कम्मो जवाब दे रही थी, "तू घास की तरह छिलपट और बांस के जैसी सूखी है."

सहसा पम्मी का छोटा लड़का रोता हुआ भीतर आया. पम्मी ने पूछा—"क्या हुआ फिलिप?"

"राज ने मारा."—फिलिप सिसकते हुए बोला.

पम्मी ने कम्मो से कहा—"देखो कम्मो, अब तुम्हारा राज बहुत सर चढ़ गया है. उसे लगाम में रखो. मेरे बच्चे मुफ्त के नहीं हैं."

जाने कैसे न चाहते हुए भी कम्मो तुनक गई—"तो क्या मेरा राज मुफ्त का है?"

"मुफ्त का नहीं, पैसों का है."—पम्मी ने व्यंग्य किया क्योंकि राज के गरीब मातापिता को कम्मो हर माह बंधी रकम दिया करती थी.

पम्मी के कहने का कम्मो ने जरा भी बुरा न माना लेकिन वह स्वयं न समझ सकी, क्यों वह एकदम उठ खड़ी हुई और बालों को बुरी तरह झटकारते हुए बोली—"खबरदार पम्मी, जरा भी आगे बोली तो."

और बस, वे झगड़ पड़ी...

झगड़ते समय उन के मन में क्रोध नहीं था हालांकि बाहर से

वे क्रोध से फटी जा रही थी. वे ताल ठोकठोक कर एकदूसरी को दोष दे रही थी और उन के गले की नसें फूल रही थीं.

पूरा दिन उन के झगड़े में ही बीत गया.

रात घिरी लेकिन वे झगड़ती रहीं. छोटी सी बात, इतना बड़ा झगड़ा. उन के पति आश्चर्य में डूब गए थे. उन्हें शान्त करने की बजाए वे मुसकराते हुए उन के झगड़े का मजा ले रहे थे और कभीकभी अपनी पत्नियों को उत्साह भी दिला रहे थे.

पम्मी जानती थी, वह झगड़ना नहीं चाहती.

कम्मो जानती थी, वह झगड़ना नहीं चाहती.

लेकिन दोनों झगड़ रही थीं—चिल्लाचिल्ला कर, उछल-उछल कर, पांव पटकपटक कर. दोनों जानती थीं, उन के पति उन की हंसी उड़ा रहे हैं. दोनों जानती थीं, उन के बच्चे भी उन्हें आश्चर्य से देख रहे हैं—लेकिन वे झगड़ रही थीं—स्वयं उन्हें पता नहीं था, क्यों. मकान के दूसरे किराएदार भी खिड़कियों से झांक कर मजा ले रहे थे.

नया दिन ऊगा. उठते ही वे दो जंगली मुर्गियों की तरह एकदूसरी से जूझ पड़ीं. उन के पति हंसतेहंसते लोटपोट हो गए.

पम्मी ने सूखे पत्ते की तरह कांपते हुए कम्मो के लम्बे काले बाल पकड़ लिए और दांत पीसती हुई बोली—"कमीनी! बांझ! एक झापड़ में सारे दांत तोड़ कर धर दूंगी. मकानमालकिन होगी तू अपने घर की. मैं रहती हूं तो किराया देती हूं. क्या समझी?"

कम्मो ने अपना शरीर उछाला और मोटी बाह हवा में उठा कर बोली—"खबरदार! दो कौड़ी की औरत, जबान लड़ाती है?"

पम्मी ने तड़ाक से कम्मो को तमाचा जड़ दिया. कम्मो लड़खड़ा गई. उन के पति, जो दूर से मजा ले रहे थे, एकदम भौंचक हो गए. वे उन की ओर लपके लेकिन तब तक कम्मो ने पम्मी के पेट में जोरदार घूंसा जमा दिया था और पम्मी दुहरी हो गई थी.

और दूसरे ही क्षण कम्मो ने पम्मी को बाहों में भर लिया. पम्मी ने अपनी काली, सूखी बांहें कम्मो की थलथल कमर के इर्दगिर्द पूरी ताकत से भेड़ दी. दोनों ने अपने माथे परस्पर के कन्धों से दबा दिए—बुरी तरह. और वे रोने लगीं, हिलकहिलक कर रोने लगीं. उन के बाल चेहरे पर आ कर गालों से चिपक गए और उन की नाकें लाल हो कर पानी से भर गईं.

पम्मी ने कम्मो की, कम्मो ने पम्मी की गर्दन छुई, नाक छुई, आंख छुई, होंठ छुए, ठुड्डी छुई, कपार छुआ ..

कम्मो ने प्यार से कहा—"पम्मी बहुत बुरी है."

पम्मी ने उसे दबाते हुए जबाब दिया—"और तू कहां की भली है. कितना झगड़ी मुझ से. बाप रे बाप!"

वे दोनों खड़ी न रह सकीं. फिसक कर नीचे बैठ गईं—एकदूसरी को थामे, एकदूसरी में समाती हुईं.

उन के पति उन की खिल्ली उड़ाते हुए हो हो कर हंसने लगे लेकिन उन्हें परवा नहीं थी.

दोपहर हुई, चूल्हा नहीं जला.

शाम हुई, चूल्हा नहीं जला.

रात हुई, चूल्हा नहीं जला.

दोनों बातें करती रहीं, करती रहीं. उन के पति होटल में

बच्चों के साथ भोजन कर आए, लेकिन इन दोनों को भूख भी न लगी. उन के भीतर की वह कुरेदन जिस ने उन्हें लम्बे अरसे से परेशान कर रखा था अब शान्त हो गई थी. वह कुरेदन, असीम प्यार करने की वह कुरेदन. उन्हें अपने कन्धों पर हल्काहल्का महसूस हो रहा था—बहुत हल्काहल्का. उस विचित्र कुरेदन के चले जाने के बाद अब उन के दिलों की प्यालियां प्यार से लबालब भर गई थीं.

कुनो

यों तो पता ही न चले : जरा सी, बिलकुल जरा सी लंगड़ाती है. थोडी मांवली भी है पर नाकनक्श अच्छा है. मछली सी आंखें उस की अपनी हैं. शरीर का गठन तराशा हुआ. गाल मादक. पर शादी नहीं होती. कारण : कुछ पगली सी है.

पहले अधिक लक्षण नहीं थे. बस, बहुत ज्यादा हंसती थी. लोगों ने सोचा भी न था. उस का हंसना सब को अच्छाअच्छा लगता था. चुप होती, सब कहते, हंसो न! पर एक दिन जरूरत से ज्यादा हंस गई. हंसती गई, हंसती गई : बात उतनी हंसी की न थी. लोग समझ न पाए, इतना क्यों हंस रही है. फिर उस का हंसना बढ़ता ही गया. छोटी सी बात पर हंसती. न हंसने की बात पर हंसती, कोई बात नहीं और हंसती.

लोगों ने मन ही मन कहा, हुं, होगा कुछ, हंसती होगी. उन्होंने सोचा भी न था ..

कुछ माह बीते और कभीकभार वह अकेलीअकेली ही मुसकराती दीख पड़ जाने लगी. मुसकराती, विभोर हो हो जाती. शुरू में किसी ने ध्यान न दिया, फिर किसी दिन सब चौंके : यह क्या है? यह यों क्यों हंसती है?

कोई पूछता, क्यों हंसती हो? वह लिपट जाती. कहती—

"कुछ नहीं. पता नहीं. यों ही." और हंसती.

मातापिता परेशान हो गए. अब क्या होगा? इस की उमर आ गई. वक्ष पूरा उभर आया. जरा सी लंगड़ाती थी और सांवली भी थी, सो चिन्ता यों ही खाए जाती थी. कौन तैयार होगा? आजकल के छोकरे तो ऐब नहीं और हजार ऐब देखते हैं. अब तो यह फिजूलफिजूल हंसने भी लगी. पढ़ायालिखाया सब बेकार.

समय बीता और उस की सीप सी धुलीधुली आंखों में खुमारी भी छाने लगी. बालों में तेल न डालती. कभी तो नहाती भी नहीं. बच्चों की तरह मचलती : ऊं! ऊं! हम तो यह लेंगे, आं S S ! कभी फूटफूट कर रोती. पूछा जाता क्यों रोती हो तो हंसने लगती.

सभी जान गए : कुन्नो पागल हो गई.

मा गिरधर गोपाल की मूरत के सामने बिलखती. इकलौती सन्तान, वह भी ऐसी? पिता घर में न आते, बाहर ही रहते. सूख गए, कांटा हो गए. कोई धक्का देता, गिर पड़ते. पहले तो कहींकहीं से सन्देश आते थे, कुन्नो दे दो. अब कोई फटकता नहीं. अरे, केवल हंसती ही तो है. हंसती नहीं तो रोती है. सभी यही करते हैं. हंसो या रोओ और जीओ. कुन्नो भी यही करती है. क्या फर्क है? घर के कामकाज में कभी वह पोची नहीं रही. रसोई कभी जली नहीं, छाछ से मक्खन उतना ही उतरा. फिर?

पर लोग भड़क गए. कहने लगे : पगली तो है, जाने कब कांच चुड़ो कर खिला दे.

साल बीता. डाक्टरो ने घुन की तरह पिता को खाया. पता नहीं डाक्टरों का प्रताप या कुदरत, कुन्नो धीमेधीमे अब कम हंसती, कम रोती. नैनों की खुमारी घटी.

पर नादानी न गई. नहीं जानती थी, जवान है, शरीर मे तराश है. यों ही आवारा घूमा करती. कपड़ों का ठीक नही. बैठती, टागें घुटनों से ऊपर तक उघड़ जातीं. कभी पल्लू हट जाता और ब्लाउज के बटन बन्द न होते. चोली होती तो ठीक नही तो वक्ष बाहर उभर आता. उसे कुछ पता नहीं. युवक उधर से निकलते, देखते, सीटियां बजाते. उसे कुछ पता नहीं. सखियां लाज की मारी उस के पास न आतीं और आपस में उस की बातें कर लाल हुई जाती. उसे कुछ पता नहीं.

मां देखती तो माथा कूटती. झोंटा पकड़ कर अन्दर ले जाती. रोतीकलपती, कपड़े ठीक करती. धमधम मारती भी. "बदजात! क्यों नंगी घूमती है?"

वह केवल आश्चर्य से बकर बकर ताकती कि क्या हो गया.

उस का घर से निकलना बन्द कर दिया गया पर वह निकल ही जाती. बाहर निकलती और किलकारी मारती कि निकल गई. फिर से घर में भर दी जाती, वह फिर से निकल जाती. बच्चों की तरह वह लुकाछिपी का मजा लेती.

हंसनारोना तो कम होता गया पर यह न गया. एक दिन मां के पास आ कर पूछने लगी—"मां, ये क्या कर रहे हैं?"

मां ने देखा, एक अत्यन्त अश्लील तस्वीर थी. मां हक्कीबक्की. चील की तरह झपट कर तस्वीर फाड़ दी. कुन्नो ने कहा—"क्यों?"

आंखें निकाल कर मा ने पूछा—"बता, कहां से मिली?"

चोटी के फुमते को गाल पर उछाल कर कुन्नो ने कहा—"क्यों? टिल्लू ने तो दी है. कहता था किसी को मत बताना."

मां रुदन से फट पड़ी. चित पड़ कर बिलखी बिलखी और

खूब बिलखी. कुन्नो कुछ समझी नहीं पर बिलखने लगी. फिर से कुछ हो गया है. पता नहीं क्या हो गया है. अकसर ऐसा हो जाता है. मां बिलखती है, वह भी बिलखती है.

रात को पिता आए. मां ने कहा—"पड़ौसी के छोकड़े की आंख लगी है. जल्दी कुछ ठौर करो. कहीं भी दे दो. बूढ़ा, खूसट, रोगी—किसी को भी दे दो. कुछ तो करो."

दूसरे दिन पिता रवाना हो गए. जा रहे थे, मां ने पूछा—"मैं अकेली कैसे सम्हालूंगी?"

"कैसे भी सम्हालो."

पिता गए, मां ने खूब पीटा. गालियां दीं : रांड़! कलमुंही! सत्यानाशी! काहे को पैदा हुई?

पता नहीं कैसे वह जरा भी न रोई. मां कितना मारती? अब मारपीट रोज की बात है. मारपीट होती है और पड़ोसी फुसफुसाहट और कुटिल कौतूहल के साथ अपनी खिड़कियों से झांकते हैं.

चिट्ठियां आती रहीं. कोई तैयार नहीं हो रहा है. कोई ज्यादा दहेज मांगता है. बिना दहेज कोई मानता भी है तो उसे गलित रोग या मिरगी है. पिता पुछवाते हैं, दे दूं? मां लिखवाती है : नहीं, जी नहीं चलता. कभी मां लिखवाती है, दे दो, किसी तरह बला टालो. पिता का उत्तर आता है : नहीं, जी नहीं चलता.

हर पत्र में हिदायत आती है : चौकन्नी रहना. रात को जाग कर भी देखना. ईश्वर न करे कहीं कुछ हो गया तो...

चार माह पहाड़ों की तरह बीते और एक पत्र आशा की किरण ले कर आया. एक प्रौढ़ है. एक छोटे से गांव में जमींदार. विधुर. पत्नी चाहिए. थोड़ा पागलपन, लंगड़ापन और सांवलापन चलेगा.

वयस नई होनी चाहिए. दहेज की कोई बात नहीं. पहली बीबी से तीन सन्तानें हैं. दो लड़कियां, एक लड़का.

गले तक आजीज आई मां ने लिखवा भेजा : दे दो.

सब निश्चित हो गया. पिता लौटे. अब बहुत खुश रहते थे. उन का सूखा चेहरा मुसकराता, लगता, किसी रबर के पुतले के गाल किसी ने खींच दिए हों.

बात फैल गई, कुन्नो की शादी होगी. जाते ही तीन जवान बच्चों की मां बनेगी. लोग हंसते : कोई अनब्याहा नहीं बचता.

लम्बी अवधि से कतराती सखियों ने कुन्नो को घेर लिया और छेड़ने लगीं. कुन्नो समझ न पाती, लड़कियां मजा लेतीं.

एक ने कुन्नो से पूछा—"जानती है, शादी में क्याक्या होता है?"

कुन्नो बोली—"हां, बाजे बजते हैं और लड्डू खाए जाते हैं."

"और कुछ?"

"और क्या?"—कुन्नो ने मुह बा दिया.

"पति किसे कहते हैं मालूम?"

"हां, जिस के घर जाते हैं वह."

"वह क्या करता है मालूम?"

"वाह, कैसे नहीं मालूम. कमाता है और रोटीकपड़ा देता है." लड़कियां हंसतीहंसती एकदूसरी पर गिर पड़ीं.

बाजे बजे. लड्डू खिलाए गए. जिस के घर जाते हैं वह सजधज कर आया. कुन्नो को रोटीकपड़ा देने के लिए वह ले गया.

सब निपट गया.

कुन्नो चली गई और मातापिता ने रो रो कर आंखें फोड़ लीं. अब जी कर क्या करना है. जो कुछ था, दे दिया. बस एक आस है. नाती हो जाए फिर सुख से मरें.

पर कुन्नो है बडी शैतान, इतना पढ़ायालिखाया, किस काम का? कभी चिट्ठी पत्री में दो चार अक्षर ही लिख देती, पर नहीं.

मातापिता रोज इन्तजार का मजा लेते. वह तो वहां जा कर हमें भूल गई. बड़ी सुखी होगी.

बहुत दिनों बाद पत्र आया. कुन्नो ने अपने पिता से पुछवाया था—"बाबूजी, वह तो बिलकुल आप के जैसे दीखते हैं. मैं ने एक बार यह बात कही तो उन्होंने मुझे खूब मारा. मैं एक बार उन की बड़ी बेटी को दीदी कह बैठी थी तो उस दिन भी खूब मारा था. क्यों मारा होगा?"

मातापिता बेहद फफके.

गांव से कुन्नो की खबरें आती रहीं. अभी भी नही सुधरी. खूब मार खाती है पर भूल कर जाती है. बाबूजी और दीदी कह ही बैठती है.

अगले साल खबर आई, कुन्नो मां बन गई. अभी भी पागल है. अपने बेटे को भैया कह कर चूमती है.

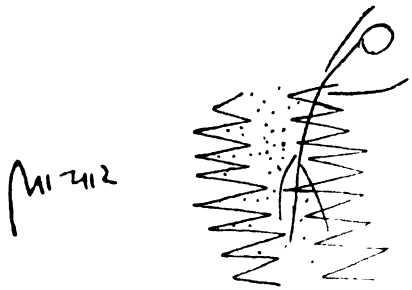

मैं ने उसे चिढ़ाया—"लो, हमारे नए पड़ोसी आ गए. अब खुश हो जाओ."

सचमुच वह चिढ़ गई. वह भीतर सोफे पर बैठी स्वेटर बुन रही थी. मैं बाहर बगिया में झाड़ियों को नए कटाव दे रहा था. वह ऊन के धागे उलझाएउलझाए पास आ कर खड़ी हो गई. मैं फिर से व्यंग्य से मुसकराया. उस ने मुझे घूरा. मैं हंस पड़ा.

वह पड़ोसियों की शौकीन है लेकिन पड़ोसियों की शौकीन कहा जाए तो चिढ जाती है.

बोला—"खड़ी क्यों हो? जाओ, मुलाकात कर आओ न. नए पड़ोसी."

और वह धमधम करती चली गई. मैं कैंची चलाता रहा. पड़ोसियों या मित्रों में मुझे अब आकर्षण नहीं है. मैं एकान्तप्रिय होता जा रहा हूं. न होऊं तो मेरा बहुत सा समय मित्र और पड़ोसी खा जाएं. जब से प्रोफेसरी के साथसाथ यह लिखना शुरू किया है, एक मिनट भी खोना मुझे कचोटता है. अपनी प्यारी बगिया को नए उभार देने के लिए भी शाम को आधा घन्टा ही दे पाता हूं, ज्यादा नहीं.

रात को भोजन करते समय उस ने कहा—"अजीब है वे दोनों..."

"कौन दोनों?"

"और कौन? जो आज आए है."

"ओह, नए पड़ोसी."

"श्रीमान दुबले छरहरे, श्रीमती मोटी ताजी! श्रीमान पांच फीट, श्रीमती पांच फीट तीन इंच!"—वह हंसने लगी. मैं भी.

आगे बोली—"मैं गई, तो श्रीमती तपाक से मिलीं. बड़ी बातूनी हैं. लेकिन श्रीमान बड़े शर्मीले. चुप चुप रहे. बस नमस्ते भर का जवाब दिया. छोटा मुन्ना रो रहा था. उसे मनाते रहे. हम दोनों बातें करती रहीं. श्रीमतीजी तो उठने ही न देती थी, जैसे बरसों की बिछुड़ी सहेली एकाएक मिली हो."

"छह बच्चे हैं."—उस ने बताया—"लडकियां दो, चार लड़के. दो बम्बई में पढ़ते हैं. दो इन के साथ हैं. लड़कियां ससुराल चली गई हैं."

और भी उस ने जाने क्याक्या बताया लेकिन मुझे सिर्फ यही याद रहा कि हमारे नए पडोसी महोदय शहर की एक ब्रान्च पोस्ट आफिस में असिस्टैंट पोस्टमास्टर हो कर आए है. चिरमिरी से उन का यहां तबादला हुआ है. श्रीमती भी कमाती हैं. चिरमिरी में गर्ल्स हाई स्कूल में हेडमिस्ट्रेस थी. यहां भी कोई नौकरी ढूंढ़ लेंगीं. बहुत फारवर्ड हैं. आदिआदि ..

दूसरे दिन वह सुबह से ही घर मे गायब. चाय और नाश्ता नौकर ने दिया. नौकर से पता लगवाया तो—जैसा कि सोचा था—वह वहीं थी—नए पड़ोसियों के यहां. मैं मन ही मन मुसकराया, कुढ़ा.

पिछले चार महीनों से वह घर खाली था. पहले उस में कोई सरदारजी रहते थे. पड़ोसी थे तो कभी नजरें मिल जाती थी वरना उन से घनिष्ठता न थी. हर इतवार को सिर के बाल दही से धोते थे

मैं बाहर बैठा होता. ब्रश करता हुआ. वह दही खरीद कर लौटते. मुझे देखते. मुसकराते. मैं भी. फिर उन्होंने घर खाली कर दिया. पता नहीं कहां गए, क्यों गए. और घर चार महीनों तक खाली पड़ा रहा. आज वह फिर आबाद हो गया था. मेरे लिए रंज की ही बात थी. मेरी बीबी अब और ज्यादा समय घर से बाहर रहेगी...

कालेज का समय हो गया था. मैं ने फाइलें उठाईं, बाइक निकाली और बाहर को चला. बगिया की महक को पार कर दरवाजे तक पहुंचा तो वह भीतर आ रही थी. यह है नए पड़ोसियों का मोह. सुबह से गायब है और अब लौट रही है. मुझे देखा तो ठिठक गई. कुछ झेंपी भी. मैं ने चेहरे पर उपेक्षा के भाव उभार लिए और आगे बढ़ कर नजदीक से यों निकल गया मानों उसे देखा ही नहीं.

उस ने पुकारा—"जरा सुनिए तो..."

वही नए पड़ोसियों की बातें करेगी. न रुका.

शाम को वापस आया तो उस का मुंह चढ़ा हुआ. छूटते ही बोली—"हम ने रुकने को कहा, आप रुके क्यों नहीं?"

"भई वाह! तुम्हारी बातें सुनने के लिए पीरियड छोड़ देता? लड़के हुल्लड़ कर देते वह?"

"दो मिनट की देर देर नहीं होती."

"तो अब भी क्या गया है, कह डालो."

और उस ने बिलकुल अप्रत्याशित बात कही—"आप कहानियां लिखते हैं न? वह भी लिखती हैं."

"कौन?"

"वही इन्दुप्रभाजी...हमारी नई पड़ोसिन..."

"अच्छा?"

"उन्होंने मुझे अपने कुछ लेख दिखाए जो महिलाओं की पत्रिकाओं में छपे थे. मैं ने उन्हें बता दिया कि हमारे वह भी लेखक हैं. सुनते ही खुशी से उछलने लगीं. बोलीं, हमारी खूब पटेगी. उन्होंने बहुत आग्रह किया है कि आज आप उन के घर आएं—मेरे साथ. चलेंगे न?"

सोचा, चला चलूं. कुछ लिखती हैं. मिलना बुरा न रहेगा.

बोला—"चलो."

वह खुश हो गई.

हम दोनों उन के घर में घुसे. यहां जब सरदारजी रहते थे, एकाध बार मैं आया था अतः घर नया न था.

इन्दुप्रभाजी बाहर निकल आईं. बड़े उत्साह से उन्होंने स्वागत किया. भीतर ले चलीं. उन के शरीर पर काफी चरबी थी लेकिन बातें करते समय अनायास खुशी से किलक उठतीं और गिलहरी की तरह उछल जातीं. चेहरा प्रौढ़ लेकिन हंसोड़. गोल्डन फ्रेम और ब्ल्यू ग्लासेस का नाजुक चश्मा. प्रौढ़ावस्था लेकिन शरीर पर काफी आभूषण. होंठों पर लिपस्टिक की पर्त भी. दांत साफ होते हुए भी खूब पान खाना दर्शाते थे.

श्रीमान घर में नहीं थे. पूछा तो पता चला बाजार गए हैं—तरकारी लाने. बच्चे भी साथ गए हैं.

इन्दुप्रभाजी कहने लगीं—"बच्चों को तो मुझ से लगन ही नहीं. बस बाप ही प्यारा है."—और हंसने लगीं. मैं भी.

बहुत बातें हुईं. उन्होंने अपने लेख दिखाए. पूछा—"कैसे हैं?"

"मैं क्या कहूं. मैं भी तो नया हूं."

"लेकिन आप तो प्रोफेसर हैं."

"उस से क्या होता है."

उन्होंने आग्रह से कहा—"ये कतरनें घर ले जाइए. फुरसद से पढ़िएगा और मत दीजिएगा. और हां, अपनी कहानियां भी भिजवा दीजिएगा."

मैं ने सोचा यह तो गले ही पड़ रही हैं. अपनी कहानियां इन्हें देने और इन के लेख पढ़ कर आलोचना करने का समय ही कहां है? मैं झिझकने लगा.

लेकिन इतने थोड़े समय में उन्होंने इतनी निकटता दर्शाई कि झिझकते ही उन्होंने मुझे डांट दिया—अधिकार से! मैं खामोश हो गया. उन की डांट थी ही ऐसी प्रभावशाली, मंजी हुई और अप्रत्याशित. मेरे चुप होते ही वह हंसने लगीं. मुझे झेंप आई. उन्होंने रिमार्क दिया—"आप भी ठीक उन के जैसे हैं."—फिर बोलीं—"वह भी इसी तरह—मेरे जरा भी ऊंचे स्वर में बात करते ही चुप पड़ जाते हैं. बड़े सीधे हैं, बडे ही सीधे और मैं ठीक उन से विपरीत हूं—शैतान!" और हंसने लगीं.

मैं मन ही मन सोच रहा था—'ओह, इन की डपट! चिरमिरी में हेडमिस्ट्रेस थीं तो बेचारी लड़कियां चूं तक न करती होंगीं.'

मेरे सामने ही उन्होंने पांच पान खा डाले. मैं ने एक लिया, बीबी ने एक.

सोचा था मुलाकात आधे घन्टे में निपट जाएगी—यहां दो घन्टे हो गए थे और इन्दुप्रभाजी थीं कि जैसे चिपक ही गई थीं.

चाय लाने के लिए उन्होंने नौकर को पुकारा. नौकर ने शायद न सुना. वह न आया तो इन्दुप्रभाजी चीख पड़ीं. मुझे लगा, वातावरण में कंपकंपी की लहरें आ रही हैं. सहमी डरी निगाहों से मैं ने बीबी की ओर देखा लेकिन वह दूसरी ओर ताक रही थी.

इन्दुप्रभाजी हंस रही थीं और बातें करने लगी थीं लेकिन मैं उदास हो गया था और खामोश चाय की चुस्कियां ले रहा था.

सहसा श्रीमान ने भीतर प्रवेश किया. हाथ में दो थैले—तरकारी से लचलच. झुझलाए हुए थे. शायद उन के दोनों बच्चों ने बाजार में परेशान किया हो. एक बच्चा रोनी सूरत बनाए था.

इन्दुप्रभाजी ने उठ कर श्रीमान के हाथ से थैले न लिए. अपने स्थान से हिलीं तक नहीं. बैठीबैठी बोलीं—"इतनी देर कैसे लगा दी?"

"एक पुराने मित्र मिल गए थे."—श्रीमान ने कहा. आवाज झीनी पतली, डरी सहमी.

अब तक श्रीमान ने हमें देखा न था. अब देखा, ठिठक गए. झट उन्होंने थैले नीचे रखे और हाथ जोड़ दिए. हम उठ खड़े हुए. उन का अभिवादन किया. इन्दुप्रभाजी बैठी ही रहीं. श्रीमान नजदीक आए. एक कुर्सी पर बैठे. परिचय दिया, लिया. वह प्रसन्न दीख पड़े.

हम बातचीत कर रहे थे कि इन्दुप्रभाजी ने बिना किसी झिझक के बीच में टोक दिया—"महेश उदास क्यों है?" इशारा उस बच्चे की ओर था जो रोनी सूरत बनाए था. उन की आवाज में हेडमिस्ट्रेस का रौब था, सौजन्यता का लेश भी नहीं.

"राह में उस का गुब्बारा फट गया."—श्रीमान बोले.

"दूसरा ले देते."

"खरीदारी में सारे पैसे चुक गए थे."

"पैसे हमेशा ज्यादा रखने चाहिए."

श्रीमान चुप रहे. मुझे बुरा लगा. मेहमानों के सामने एक पत्नी एक पति को यों उपदेश दे!

महेश और उस का भाई तरकारी के थैलों में हाथ डाल कर टमाटर मटर निकाल कर खा रहे थे. इन्दुप्रभाजी ने उन्हें डांट कर भगा दिया. फिर श्रीमान से कहा—"थैलों को नीचे रखने की बजाय आले में न रख दिया होता?"

फिर वह उठीं और थैलों को आले में रख आईं. मैं ने श्रीमान की आंखों में देखा, कचोट थी. इन्दुप्रभाजी की आंखें चमक रही थीं. मानों कह रहीं हों मुझ से, देखा न? कितने सीधे हैं!

मैं और उदास हो गया. प्रयास यही किया, उदासी चेहरे पर न उठे.

किसी तरह बातें समाप्त कीं. हम दोनों उठ खड़े हुए. कहा—"अब आप भी हमारे यहां आइए न!"

श्रीमान सूखी हंसी हंसे. बोले—"जरूर!"

इन्दुप्रभाजी ने कहा—"समय ही कहां मिलता है काम के मारे."

मैं श्रीमान के दुबले सूखे, पत्नी से तीन इंच नाटे शरीर को देखता रहा.

कहने को तो इन्दुप्रभाजी ने कह दिया था, समय कहां मिलता है काम के मारे, लेकिन काम वह ज्यादा न करती थीं. दो नौकर थे घर में, वे ही सब कुछ करते थे. हां, तरकारी लाने का काम श्रीमान के ही जिम्मे था. इन्दुप्रभाजी के अनुसार नौकर बेइमानी करते हैं.

मैं ने अपनी कहानियां उन्हें भिजवाई न थीं. वे घर

आ धमकीं और मुझे डांट दिया. मैं ने चुपचाप उन के हाथों में कहानियां थमा दीं. वह चली न जा कर बहुत देर तक बैठी रहीं, बातें करती रहीं. पति के सीधेपन का उन्होंने जाने कितनी बार उल्लेख किया. मैं बोर होता रहा, बाहर से हंसता रहा.

उन के लेख मैं तीन दिनों तक न पढ़ पाया. चौथे दिन वह आ कर मुझे डांटने लगीं तो मेरी बीबी हंस पड़ी. मैं पानीपानी हो गया. तुरन्त उन के लेख ड्रार से निकाले. उन्हें आदर से बिठाया. उन के सामने ही सारे लेख पढ़ गया और मौखिक आलोचना—जैसी बन पड़ी—कर दी.

आलोचना के बाद भी वह चली जातीं तो बात थी पर वह देर तक बैठी रहीं, बातें करती रहीं, पति के सीधेपन का उन्होंने इतनी बार उल्लेख किया कि मैं बुरी तरह ऊब गया.

फिर वह प्रायः ही मेरे घर में घुसी रहतीं. मेरी स्वतन्त्रता लुट गई. हर समय इन्दुप्रभाजी का अदब मानना पड़ता. उन का स्थूल शरीर, अकड़ी हुई चाल, प्रभावशाली चश्मा और...और वह डांट अदब मानने को मजबूर करती थी. बीबी और उन में दांतकटी रोटी हो गई.

श्रीमान दिन भर तो ब्रान्च पोस्ट आफिस में जूझे रहते, शाम को घर लौटते, थकेमादे. और घर सूना होता. बच्चे खेलने चल दिए होते, इन्दुप्रभाजी मेरे घर में होतीं—मेरी बीबी के साथ.

लेकिन वह निःश्वास तक न छोड़ते. पत्नी की ऐसी उपेक्षा के आदी हो गए थे वह. मुझे उन पर बहुत दया आती. वह बरामदे में कुर्सी डाल कर बैठ जाते और आंखें अखबार में होतीं. मैं एक बार उन के घर गया—सोचता हुआ—बेचारे अकेले बैठे हैं. शाम को भी कम्पनी में कोई नहीं. चलूं. मैं ही कुछ बातें कर लूं.

अखबार से आंखें उठा कर उन्होंने मुझे देखा. मुसकाए.

मैं भी. बोले—"बैठिए." बैठ गया. और वह फिर से अखबार में घुस गए. बात करने के लिए मैं ने पूछा—"क्या खबरें हैं?"

सोचा था, बात का सिलसिला जारी हो जाएगा लेकिन उन्होंने तो अखबार ही समूचा मुझे थमा दिया. कहा—"आप ही देख लीजिए न. मैं बाद में देखता रहूंगा."—और मानों जबरदस्ती मुसकाए.

मैं ने कहा—"नहीं नहीं, आप ही देखिए..."

लेकिन वह उठ खड़े हुए. बोले—"महेश की मां चूल्हे पर दूध छोड़ गई हैं. कहीं उबाल न आ जाए. आप बैठिए, मैं अभी आया."—और वह ऐसी तत्परता से भीतर चले गए मानों उन्हें गुलामों के बाजार से खरीदा गया हो.

मुझे बुरा लगा. अखबार यों ही देखता रहा. वह लौटे भीतर से और बैठे. सर्द, खामोश. मैं ने अखबार रख दिया. बातें करने के लिए ही तो आया था. लेकिन श्रीमान ने अपनी ओर से कोई बात न की. बस जो मैं ने पूछा उस का जवाब दे दिया—भले मुसकराते हुए और सौजन्यता से—लेकिन थोड़ी ही देर में मैं ऐसा महसूस करने लगा मानों मैं मर्दुमशुमारी का कोई अफसर हूं और श्रीमान से एक के बाद एक नए सवाल पूछता जा रहा हूं और वह जवाब देते जा रहे हैं...

मुझे इच्छा हो आई, पूछूं, उन के अपनी पत्नी के बारे में क्या विचार हैं लेकिन न पूछ सका. सोचा, जरूर वह और उदास हो जाएंगे.

मैं प्रश्न पूछता रहा...वह जवाब देते रहे...

और मैं ऊब गया.

दूसरे दिन गया, तीसरे दिन गया, वही उदास व्यवहार.

और मैं ने जाना छोड़ दिया. चाह कर भी न जा पाता.

वह मुझे करुणा की मूर्ति मालूम पड़ते थे और मैं उन्हें देख न पाता था.

ना, उन से नफरत न हो गई थी. बल्कि उन के प्रति मेरा मन सहानुभूति और करुणा से भर गया था. मैं समझ गया था, वह लाचार हैं. चिरमिरी की हेडमिस्ट्रेस के स्थूल शरीर, नीले चश्मे और खतरनाक डपट ने बात करने की उन की इच्छा को कत्ल कर दिया था. हमेशा हर किसी से दब कर रहना अब उन के लिए अस्वाभाविकता न रह गई थी. कई बार मेरा जी चाहता, चौबीसों घन्टे उन के पास बैठा रहूं—उन से बातें कर उन की उदासी और चुप, खामोश रहने की आदत को दूर खदेड़ता रहूं. उन के भीतर ऐसा बल भर दूं कि वह पत्नी के खिलाफ बगावत कर दें.

लेकिन विडम्बना यह थी कि मैं भी इन्दुप्रभाजी से दबता था, उन के नीले चश्मे और खरखराते गले से डरता था. कुछ लोग होते ही ऐसे हैं कि सब को दबा बैठते हैं—अनजाने में ही.

पन्द्रह दिन बाद दीवाली थी.

कालेज बीस दिनों के लिए बन्द था. मैं एक नई कहानी पूरी करने में लगा हुआ था. अचानक श्रीमान ने भीतर प्रवेश किया. मैं ने तुरन्त उठ कर उन का अभिवादन किया. बैठने को कहा. न बैठे. बोले—"चलो, महेश की मां तुम्हें बुलाती हैं."

"महेश की मां? क्यों?"

"यह तो मैं ने नहीं पूछा लेकिन चलो."

यह तो मैं ने नहीं पूछा! उन में पूछने का साहस नहीं है या इच्छा?

मेरा मन दया से भर गया.

टाइपराइटर केस में बन्द किया और उन के साथ चल पड़ा.

इन्दुप्रभाजी मुझे देखते ही बोलीं—"प्रोफेसर साहब, इस रूम में कौन सा कलर करवाया जाए? और उस में कैसे पर्दे मैच करेंगे?"

दीवाली के स्वागत में घर को नए सिरे से सजायासंवारा जा रहा था.

मैं बोला—"इस विषय का मैं क ख भी नहीं जानता."

वह कहने लगीं—"आप बनते हैं. आप को सब मालूम है. मुझ से आप इतना छुपते क्यों है?"

मैं खामोश.

उन्होंने पूछा—"लाइट ग्रीन कैसा रहेगा?"

और मैं ने कह दिया—"ठीक रहेगा."

"और पर्दों का रंग?"

मैं ने जो रंग जबान पर आया बता दिया.

वह किलकीं—"वंडरफुल! वंडरफुल! आप का चायस कमाल का है. मैं ने कहा था न कि आप छुपते हैं? लेकिन हीरा कौंध कर रहता है."

श्रीमान पास ही खड़े थे, बिलकुल खामोश और उदासीन—मानों उन का अस्तित्व ही न हो.

इन्दुप्रभाजी ने घन्टे भर मुझे बोर किया.

वह तसवीरें लगा रही थीं. मैं दूर से देख कर बताता था—तसवीर टेढ़ी तो नहीं है. श्रीमान उन्हें तसवीरों के लिए कीलें दे रहे थे—स्टूल इधरउधर खिसका रहे थे और आंखें मसल रहे थे क्योंकि तसवीर लगाने से दीवार का चूना आंखों में जा रहा था—और वह खामोश थे...

सहसा छोटे मुन्ने की गेंद पर उन का पैर पड़ा. दूसरे ही क्षण जमीन पर थे. मैं ने दौड़ कर उन्हें उठाया. इन्दुप्रभाजी बोलीं —"हाय राम! जरा देख कर तो चलना चाहिए."—लेकिन स्टूल से नीचे न उतरीं.

हर साल दीवाली के अवसर पर हमारे मुहल्ले से एक टोली सात मील दूर के जगन्नाथ नाले पर जाती है. वहां पिकनिक उड़ती है और खूब हुल्लड़ होता है.

जगन्नाथ नाला कहलाता नाला है पर है छोटी नदी. जरा भी गहरी नहीं. नहाने में मजा आ जाता है. नन्हीं मछलियां कपड़ों में घुस घुस आती हैं.

इस वर्ष भी गए सब. मैं. बीबी. श्रीमानजी. इन्दु-प्रभाजी. उन के चारों लड़के—जो दो लड़के बम्बई में पढ़ते थे, वे दीवाली की छुट्टियों में घर आए थे. और उन की दोनों लड़कियां, जो ससुराल से आई थीं. बड़ी लड़की के दो बच्चे. छोटी का एक बच्चा. मुहल्ले के कुछ लोग.

मैं ने हाल ही में नई जाप खरीदी थी. पहले मैं मुहल्ले के लोगों को व रसोई का सामान वहां पहुंचा आया. दूसरी ट्रिप में श्रीमानजी मय कुटुम्ब जीप में चढ़े. मुझे तीसरी ट्रिप भी करनी थी और बचे कुछ और लोगों को ढोना था.

रास्ते में इन्दुप्रभाजी बोलीं—"प्रोफेसर साहब, मैं भी ड्राइव करना जानती हूं."

स्टीयरिंग सम्हालते हुए मैं ने आश्चर्य से कहा—"अच्छा?"

वह श्रीमान की ओर इशारा कर के बोलीं—"लेकिन यह नहीं जानते."

श्रीमान मुसकरा न सके. अपने स्थान पर सिकुड़ से गए. मैं कुछ न बोला.

उन्होंने आगे कहा—"चिरमिरी में हमारे एक पड़ोसी की जीप थी. मैं तो चलाना सीख गई पर यह न सीख सके. जानते हैं क्यों? एक बार इन से एक मेमना दब गया. बस इतनी सी बात!" और वह स्वर में भर्त्सना का पुट ला कर हंसने लगीं.

न चाहते हुए भी मैं थोड़ा मुसकराया.

जगन्नाथ नाले पर सब को उतार मैं तीसरी ट्रिप के लिए शहर रवाना हो गया. जाते समय मैं ने श्रीमान पर एक दृष्टिपात किया. उन के चेहरे पर ऐसे भाव तैर रहे थे कि वह आए ही क्यों. उन के बेटेबेटियों का इधर ध्यान ही न था. मां के ऐसे व्यवहार की वे आदी लगीं.

तीसरी ट्रिप कर के लौटा. काफी थक गया था. सोचा, नाले की किसी एकान्त जगह में जा कर बैठूं. एक रमणीक झाड़ी की ओर बढ़ा. झाड़ी पार की तो ठिठक गया. वहां श्रीमान अकेले बैठे थे. बिलकुल स्थिर, मानों कोई पुतला कपड़े पहन कर बैठा हो. मैं ने सोचा, इन्हें पुकारूं या नहीं? जाने किस मूड में होंगे.

आखिर मैं ने कहा—"अरे! आप यहां? अकेले?" और पास जा कर बैठ गया.

वह केवल हंसे. उन की मुद्रा में कोई फर्क न आया, मानों चेहरे को छोड़ बाकी समूचा शरीर मुर्दा हो.

खामोशी...खामोशी...

"चलिए न, सब रसोई की तैयारी कर रहे हैं. हम भी हाथ बंटाएं."

उन्होंने कहा—"ना. आप जाइए."

मुझ से न रहा गया. सहानुभूति से कुछ डरतेडरते पूछा—"क्यों? वहां महेश की मां हैं इसलिए?"

उन्होंने चौंक कर मेरी ओर देखा, फिर घबड़ाए हुए से बोले—"नहीं नहीं."

मैं ने कहा—"तो क्यों नहीं चलते?"

वह तुरन्त उठ खड़े हुए और बोले—"चलो!"—मानों मुझे झुठलाना चाहते हों.

ईंटों का चूल्हा सुलग रहा था. इन्दुप्रभाजी आटा सान रही थीं. मेरी बीबी और श्रीमान की दोनों लड़कियां तरकारी काट रही थीं.

मुझे देखते ही इन्दुप्रभाजी ने पूछा—"प्रोफेसर साहब, आप को रसोई बनाना आता है?"

मेरी बीबी किलकी—"अरे, मुझ से भी अच्छा बनाते हैं."

मैं ने मजाक किया—"तुम्हारा बटर मारना बेकार है. तारीफ करोगी तो मैं रसोई थोड़े ही बना दूंगा."

सब हंसने लगे. मैं भी.

इन्दुप्रभाजी कहने लगीं—"आप तो सभी कुछ जानते हैं."—उन्होंने अपना नीला चश्मा ठीक किया और स्थूल शरीर हिलाया. कहा—"आप इन्हें भी कुछ सिखाइए न?"—उन्होंने श्रीमान की ओर इशारा किया—"यह कुछ भी नहीं जानते. अचानक मैं मायके चली जाऊं या बीमार पड़ जाऊं तो यह झट होटल की शरण लें."

"इन को क्यों दोष देती हैं? मैं भी यही करता हूं. मैं ही क्या, हर कोई यही करता होगा."

इन्दुप्रभाजी बीच में बोलीं—"हर कोई भला क्यों होटल

जाएगा? रही आप की बात तो आप को समय न मिलता होगा इसलिए जाते होंगे."

सहसा वह आटे सने हाथों से तालियां पीटने लगीं और बोलीं —"प्रोफेसर साहब, मैं एक बात बताना तो भूल ही गई."

वह किलकीं. उन्होने श्रीमान की ओर इशारा किया और कहा—"यह तैरना भी नहीं जानते! और मैं ऐसी तैराक हूं कि इस नाले को दस बार पार कर जाऊं. स्कूल की तैराकी मे कभी दूसरा नम्बर नहीं लिया .."

मुझे कोफ्त होने लगी कि क्यों श्रीमान को यहां लाया. किसी तरह उन्हें साथ ले कर वहां से खिसक गया.

हम लोग उसी एकान्त स्थल में जा कर बैठ गए. तब तक बैठे रहे जब तक रसोई न बन गई और सब लोग नहाने की तैयारियां न करने लगे.

हम झाड़ी से बाहर आए. सूर्य माथे से जरा नीचे झुक गया था.

"चलिए नहाने!"—मैं ने कहा.

"मैं न नहाऊंगा."

"क्यों?"

"मैं तैरना नहीं जानता."—स्वर में दर्द था.

मैं ने हंसने का ढोंग किया—"तो क्या हुआ? मैं भी ठीक से नहीं तैर पाता. फिर नाला गहरा भी तो नहीं है. आप चलतेचलते इधर से उधर जा सकते हैं. कैसे न नहाएगे आप, मैं आप को नहलाऊंगा."

मैं ने उन का हाथ पकड़ा और नाले की ओर से चला. वह कहते रहे—"मुझे नहीं नहाना."

सब डुबकियां ले रहे थे. कूद रहे थे. किलक रहे थे.

मैं ने अपने कपड़े उतारे और श्रीमान से बोला—"क्या देखते है? आइए पानी में."—और कूद पड़ा.

वह किनारे पर ही खड़े रहे.

सहसा वह झटपट कपड़े उतारने लगे और धम्म से पानी में कूद पड़े और गहरे उतर गए और जब ऊपर आए तो अकबकाए हुए थे.

इस अचानक परिवर्तन से मैं दंग रह गया. मैं ने तो सोचा था, मुझे बाहर निकल कर उन्हें जबरदस्ती पानी में उतारना होगा.

दूसरे ही क्षण इस परिवर्तन का कारण सामने आ गया. मैं ने देखा, उधर से इन्दुप्रभाजी अंगोछा लिए स्त्रियों के घाट की ओर जा रही थीं.

उन्होंने श्रीमान को पानी में देखा तो हंसने लगीं—"अरे! आज यह नहा रहे हैं. प्रोफेसर साहब, इन्हें तैरना सिखाइए तैरना."

और ठठाती हुई चली गईं.

नहा कर हम बाहर आए. श्रीमान मुसकराने की चेष्टा कर रहे थे.

शाम ढल गई. खानापीना हो चुका था. ग्रामोफोन पर खूब रिकार्डिंग की गई थी. मैं ने कई स्नैप्स लिए थे.

अब वापस जाने की तैयारियां हो रही थीं.

सब से पहले मैं मुहल्ले के लोगों और बच्चों को शहर पहुंचा आया. दूसरी ट्रिप में सामान, बर्तन, दरियां वगैरह भरी गईं और जो थोड़ी जगह बची, उस में कुछ बच्चे आ गए. उन्हें शहर पहुंचा कर जब लौटा तो रात हो चली थी.

इन्दुप्रभाजी पास आ कर बोलीं—"प्रोफेसर साहब, जीप मैं ड्राइव करूंगी."

आज तो उन की आवाज तक से मुझे नफरत हो गई थी. मैं ने कहा—"ड्राइविंग सर्टिफिकेट है आप के पास?" और हंसा ताकि उन्हें बुरा न लगे.

वह बोलीं—"सर्टिफिकेट की ऐसी तैसी! शहर के बाहर कौन देखने आता है? फिर सर्टिफिकेट जेब में रख कर कोई थोड़े ही घूमता है."

"लाइट ठीक नहीं है. रास्ता भी ऊबड़खाबड़ है. चलाते बनेगा?"

"क्यों न बनेगा?"

"ऐसा करें, मैं जीप को सड़क पर पहुंचा दूंगा, फिर आप ड्राईव करिएगा."—मुझे कहना पड़ा. जान गया था, पिंड न छोड़ेंगीं.

मान गईं.

मेरी बीबी, श्रीमानजी, उन के बेटेबेटियां और इन्दुप्रभाजी बैठीं. मैं ने जीप स्टार्ट की.

सड़क आ गई.

इन्दुप्रभाजी बोलीं—"प्रोफेसर साहब, अब तो सड़क आ गई."

मुझे जगह देनी पड़ी.

श्रीमान इतने चुप बैठे थे कि मुझे शक हुआ, कहीं वह छूट तो नहीं गए? मैं ने पीछे की सीट पर नजर फेरी. नहीं, वह छूटे न थे. मैं उठ कर उन के पास बैठ गया. वह जरा सा हिले, बस.

इन्दुप्रभाजी का अनाड़ीपना साफ झलकता था लेकिन

वह अकड़ी फूली जा रही थीं.

एक बार अचानक जीप सड़क से नीचे उतर गई. एक बार एक मोड़ पर इन्दुप्रभाजी चाल धीमी करना भूल गई. एक बैलगाड़ी के इतने करीब से जीप निकली कि बैल बिदक गए. मैं ने सोचा अब वह जगह छोड़ देंगीं लेकिन वह डटी रही.

श्रीमान की आंखें फैल गई थी मानों कोई दिलचस्प तमाशा देख रहे हों. और मेरी धड़कन बढ़ चली थी.

इन्दुप्रभाजी जोर से चीखीं. उन्होंने पूरी ताकत से ब्रेक मारी. यहां एक मोड़ था. झटके से हम एकदूसरों पर गिर पड़े. उधर खन्दक था. जीप उतर गई. गनीमत थी, उलटी नहीं.

मैं झटपट नीचे उतरा. इन्दुप्रभाजी इतनी डरी हुई थी मानों अभी बेहोश हुईं, अभी बेहोश हुईं.

जीप का पिछला बायां चक्का पंक्चर हो गया था. धूल का बादल हवा में उठ आया था. जीप की लाइट में उस के कणों की नन्हींनन्हीं सतहें चमक रही थीं.

श्रीमान एक ओर खड़े थे—धूल के बगूले में लिपटे. मैं उन की ओर बढ़ा. उन्होंने मुझे देखा. अब तक वह स्थिर थे लेकिन मुझे देखते ही वह हिलने लगे. फिर वह धीमे से हंसे. फिर जरा जोर से. फिर काफी जोर से. फिर ठठा कर. और फिर हंसतेहंसते जमीन पर लोट गए.

संसार की सब से सच्ची कहानी

"अरे, मर गए?"

मेरी ओर देखते हुए आश्चर्य से दवे ने पूछा. फिर भूल पकड़ में आई—यह आश्चर्य प्रकट करने का नहीं, दुःख प्रकट करने का मौका है. सो अपने वाक्य को उन्होंने सुधारा—"अरे अरे! बड़ा बुरा हुआ! मर गए!"

"घर चलेंगे उन के? और श्मशान?"

"अरे, तुम भी क्या पूछते हो. इतनी पवित्र आत्मा विसर्जित हो जाए और श्मशान जाना न जाना प्रश्न बना रहे? बेवकूफ हो तुम!"

और हम दोनों साथसाथ चलने लगे.

"क्या हुआ था उन्हें?"

मैं ने चकित हो कर पूछा—"आप को नहीं मालूम? टी. बी. हुई थी, सभी जानते हैं."

दवे फिर भूल कर गए थे. यह प्रश्न उन्हें न पूछना था. पर बात बनाना उन्हें आता है. बोले—"अरे, मालूम कैसे नहीं था? पर वह रहते हैं शहर के उस छोर पर और मैं इस छोर पर. मुलाकात कभी होती नहीं थी. समाचार धुंधलेधुंधले मिला करते थे कि टी. बी. हो गई है. पर इतनी बढ़ गई है यह नहीं सोचा था. बड़ा बुरा हुआ. उन्हें और जीना था..."

मैं ने कटुता से पूछा—"ताकि और कष्ट भोगते?"

दवे आतंकित हो कर चुप हो गए.

मैं ने कहा—"पर वह टी. बी. से नहीं मरे. उन्होंने आत्म-हत्या की है."

दवे पर अचानक सांप गिर पड़ा हो यों उन की आंखों की पलकें फट गईं. लगभग चीखते हुए वह बोले—"क्या?"

"हां, पर बात दबाने की कोशिश की जा रही है. आप भी किसी से न कहिएगा."

"लेकिन कारण?"

"वह अपनी लड़की की शादी करना चाहते थे पर शादी के लिए जो रुपया जमा किया था सब दवाओं में बहा जा रहा था. सो तग आ कर..."

आकाश स्याह हो कर दुबक गया था. तारे बिलख रहे थे. तेजी से भाग रही कारों से रोने की आवाज आती थी. हम दोनों खामोश चलते रहे.

उन का मकान आ गया. एक छोटी उदास बगिया से घिरा वह मकान मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों वह पका हुआ फोड़ा हो—दर्द करता हो पर फूटता न हो.

उन की बेटी निर्जीव ठूंठ की तरह आंगन में बैठी थी. हम ने उसे बाहर से देखा. वह अकेली थी. हमें शंका हुई, क्या लाश उठ गई?

लालटेन की फीकी, पीली, बेवकूफ रोशनी वहां मरियल अजगर की तरह लेटी थी. हम बगिया पार कर उस लड़की के पास गए. उस के बाल बिखरे थे, आंखें लाल थीं. वह रो नहीं रही थी

पर रो जरूर चुकी थी. उसी की शादी के लिए उस के पिता ने आत्म-हत्या की थी. यह जैसे उस का कोई जघन्य अपराध था जो दुनियां में जाहिर कर दिया गया था और वह बेशरम हो गई थी. मैं ने थूक निगलते हुए हकलाहट के साथ पूछा—"क्या..."

"हां,"—उस ने प्रेत सी आवाज में कहा—"दो मिनट हुए सब चले गए हैं. मां अन्दर बेहोश है."

अन्धेरे में उस की आवाज से तोता फड़फड़ा उठा और हम कांप गए. हम तुरन्त मशीनों की तरह 'चलो भाई' फुसफुसा कर वापस मुड़ गए और गुड्डों की तरह एक से, नपेतुले तेज कदमों से बगिया के आरपार निकल कर श्मशान की दिशा में चलने लगे.

कुछ ही देर में हम ने उन लोगों को पा लिया.

सब सिर झुका कर चले जा रहे थे, मानों वे आटे के जिन्दा पिंड हों और देर तक खूटी से लटका कर फिर चलतेफिरते जमीन पर छोड़ दिए गए हों. आगे लाश थी, फूलों में छुपी. रास्ते में कुछ व्यक्ति फूल फेंकते जा रहे थे. खामोशी ...फूल रास्ते पर गिरते तो आवाज होती मानों दूर कहीं कंकड़ों की बारिश हो रही हो...

मैं आगे जा कर भावुकता से बोला—"मैं कंधा देना चाहता हूं."

तुरन्त दो व्यक्ति हट गए और लाश यों हचमचा गई मानों ठठरी से लुढ़क जाएगी. "सम्हालो, देखो,"—की आवाजें उठीं.

दो व्यक्तियों की जगह अकेला मैं न भर सकता था. मैं ने मुड़ कर दवे को देखा पर वह वहां न थे. मन ही मन कठोरता से हंस कर मैं ने एक व्यक्ति का स्थान सम्हाला. दूसरे का एक दूसरे ने.

और मैं ने उन अभीअभी हटे दो व्यक्तियों को देखा. उन के चेहरों पर छटकारे के स्पष्ट चिन्ह थे जिन्हें वे जरा भी न छिपा रहे

थे. उन में से एक छुटकारे की अंगड़ाई लेने लगा. मेरा शरीर क्रोध से जल उठा. मुझे लगा, उन दोनों को नंगा कर भरे बाजार में फेंक दूं.

श्मशान आ गया...

लाश प्रायः जल चुकी थी. मैं बुत की तरह एक पत्थर पर बैठा शोलों को घूर रहा था जो किसी नरभक्षिणी राक्षसी की प्रसन्न जीभ की तरह अंधकार की छाती कुरेदकुरेद कर इधरउधर लपक रहे थे.

दवे पता नहीं कहां थे. मैं उन्हें ढूंढ़ने निकला.

श्मशान में दोतीन लोग ही चिता के पास थे. लाशें जलाने में माहिर वे व्यक्ति अपनी भावनाएं भी जला कर भस्म कर चुके थे. अन्य लोग दोदो चारचार की टोलियों में बैठ गए थे और फुसफुसा कर हौलेहौले बातें कर रहे थे ताकि श्मशान की शांति भंग न हो और चिता के जलने की आवाज सुनाई देती रहे.

मैं ने कई टोलियों में दवे को खोजा. कहां थे वह? किसी का चेहरा ठीक से दीख न पड़ता था. मैं हर व्यक्ति को एकदम नजदीक से देख कर उसे चौंका देता था. मुझे लगा, मैं प्रेत हो गया हूं.

दवे पता नहीं कहां चले गए थे. जिन से भी मैं ने पूछा, उन्होंने यही कहा—"अभी तो यहीं थे, कहां चले गए?"

दो युवक अंधकार में लिपटे एक ओर बैठे फुसफुस कर रहे थे. उन के पास से मैं गुजरा. एक दूसरे से कह रहा था—"यार! आना बेकार हुआ. मैं ने सुना था, चिता जलने पर लाश उठ कर बैठ जाती है. वैसा कुछ नहीं हुआ."

दूसरे ने कहा—"और खोपड़ी फूटने की भी आवाज सुनाई नहीं दी."

मुझे देख कर वे चालाक अपराधियों की तरह खामोश हो

सिकुड़ कर बैठे दो बुड्ढों के पास से मैं गुजरा. एक दूसरे से कह रहा था—"हें! हें! उस की लौंडिया वैसे है बड़ी हुस्नवाली. आंखें देखी हैं तुम ने? कटोरे! शादी करोगे?"

दूसरा एक हजार सुन्दरियों के स्वामी की तरह हंसा, खिस्स!

मैं विद्रोह कर उठा. जानबूझ कर मैं उन के पास गया और बोला—"दवेजी को आप लोगों ने देखा?"

दोनों भयानकता के साथ खामोश हो गए. वे एकदूसरे के करीब आ गए और एकदूसरे के कंधों में अपने चेहरे छिपाने लगे—उस खरगोश की तरह जो शिकारी के हाथ में पड़ जाने पर अपने लम्बे कान आंखों पर ढांप कर सोचता है, मैं पकड़ा नही गया हूं. मेरे प्रश्न का उत्तर उन के मुह से न फूटा. शर्म से वे अंधकार से भी काले हो गए और दो मुर्दों की तरह पड़े रहे. मैं थूक कर आगे चला गया.

"दवे कहां मर गया ?"—कचोट की खूंखार आंधी ने मुझे घेर लिया था.

बीच मे चिता चल रही थी. चारों ओर घेरे में लोगों की दोदो चारचार की टोलियां बैठी फुसफुसा रही थीं, मानों वे सब नंगे अभिशप्त भूत थे जो आकाश से अचानक झुंडों में यहां उतर आए थे और भयंकरता बढ़ाबढ़ा कर उस का आनन्द ले रहे थे.

जिधर जाता, उधर टोलिया...फुसफुसाहट...

चिता का प्रकाश उन पर पुत गया था जो शोलों के साथ हिलता हुआ उन पर नाच रहा था. बीच में चिता, आसपास टोलियां और फुसफुसाहटें...

"अरे, आजकल तो शादीशुदा भी गैर मर्दों पर फिसल जाती हैं."—खिस्स की आवाज!

"जो हो, लौंडिया है बड़ी खूबसूरत."—एक बुड्ढी पोपली आवाज.

"शादी की जा सकती है उस से."—दूसरी बुड्ढी पोपली आवाज.

"उस की मां भी क्या कम है."—एक जवान आवाज.

"तू तो देख कर बेमौत मर जाएगा."—दूसरी जवान आवाज.

"धीमे बोल."—डरी हुई जवान आवाज.

"ही ही.'—धीमी हंसी.

"अबे, सुन तो, कल मेरे घर आना. एक तस्वीर लाया हूं. कपड़ा है पर कपड़ा नहीं. भगवान कसम, क्या कमाल..."—एक आवारा आवाज.

मैं पागल की तरह एक दिशा में दौड़ रहा था कि सहसा अंधेरे में किसी से टकरा गया. शेषप्रायः चेतना ने भी साथ दिया—"अरे दवे? कहां चले गए थे? कब का खोज रहा था."

दवे ने मेरा कालर पकड़ लिया और कान में फुसफुसा कर बोले—"देख, अभी सब नहाने जाएंगे. मैं रात को डबरी में नहाऊं तो कल खाट पकड़ लूं. एक मुर्दे के लिए इस की क्या जरूरत? मैं यहां से सटक रहा हूं. किसी से बताना नहीं."

मैं चुप.

"और देख, अभी आजाद भाई से बात हुई है मेरी. कल उन के लिए एक शोकसभा होगी. तुम मेरे लिए लेख लिख देना. पढ़ूंगा. मैं तुम से क्या छिपाऊं, उन पर श्रद्धामात्र रखता था...अ...रखता हूं ...पर जानता कुछ नहीं उन के बारे में..."

मैं चुप.

"तुम्हें क्या हो गया है?"

"कुछ नहीं."

"सुन रहे हो?"

"हां."

"और हां, कल मैं बहुत व्यस्त रहूंगा. लेख तैयार रखना. कल स्वर्गीय आत्मा पर कविता होगी. लेकिन कवि झुमकलाल एक बोतल के बिना न मानेगा...सब मुझे ही देखना होगा..."

चिता की एक लपक भभकी और बुझ गई.

चिता के चारों ओर बैठी सारी फुसफुसाती टोलियां सहसा जादू की तरह उठ खड़ी हुईं. वे नहाने जाएंगीं अब.

दवे अंधकार में गायब हो गए.

मुझे लगा मैं रो रहा हूं. रुमाल निकाला. आंखें पोंछीं.

रुमाल गीला नहीं हुआ.

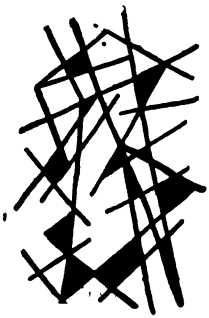

બંધ દરવાજે ખુલ્લી કુંડી

अकेलीअकेली शचि बुरी तरह ऊब गई. पापा दफ्तर में थे और उन के घर लौटने में कम से कम चार घन्टों की देर थी. अम्मी फ्रैंड्स क्लब गई हुई थी और उस के भी लौटने में अभी तीन घन्टों का समय था. शचि ने अम्मा से बहुत जिद की थी कि मैं भी फ्रैंड्स चलूंगी लेकिन अम्मी ने यह कह कर साफ इन्कार दिया था कि अभी तुम्हारी तबीयत पूरी तरह ठीक नहीं हुई है. जातेजाते वह उस से कह गई थी—"छत पर मत निकलना. ठंडी हवा बह रही है."

"हुं."—शचि ने अन्यमनस्क भाव से कह दिया था.

"दरवाजे भीतर से बन्द रखना. अब तुम छोटी नहीं हो."

"हां! हां! हां!"—शचि चिढ़ गई थी. अम्मी केवल धीमे से मुसकराई थी और ऊंची एड़ी के जूते खटखटाती हुई बाहर चली गई थी. पीछे से शचि ने दरवाजे की कुंडी चढ़ा कर अपने को कमरे के भीतर कैद कर लिया था.

अब तुम छोटी नहीं...

शचि को अच्छी तरह मालूम है, अब वह छोटी नहीं रही. फिर क्यों उसे बारबार एक ही बात याद दिलाई जाती है? क्या अम्मी नहीं जानती कि इस वाक्य से शचि अब बुरी तरह चिढ़ने लगी है?

रेडियो खोल कर शचि ने एक फिल्मी पत्रिका उठा ली लेकिन

उस में भी उस का मन न लगा. उस के मन में बारबार एक ही बात घुट रही थी ..अब तुम छोटी नहीं ..

अचानक उसे याद आया कि पूरे घर में वह बिलकुल अकेली है. वह, जाने कैसे, अपनी ऊब को भूल गई और बहुत खुश हो उठी. उसे लगा कि हर जवान लड़की को रोज कुछ घन्टे बिलकुल एकान्त के मिलने चाहिए. वह पलंग से उठी और आदमकद शीशे के सामने खड़ी हो गई. उस ने अपनी लटों को देखा, आंखों को देखा, नाक को देखा, होंठों को देखा, गर्दन को देखा. आहा, वह कितनी प्यारी है. जब वह स्वयं को ही इतनी अच्छी लग रही है तो हमउम्र लड़कों को कितनी उत्तेजक लगती होगी! मुसकराहट पंख फड़फड़ाती हुई आई और उस के होंठों पर बैठ गई.

वह शीशे के सामने तिरछी खड़ी हो गई और देखने लगी कि उस के शरीर के उभार उस पोज में कैसे दीख पड़ते हैं. पूरे शरीर में उसे अपना गदराया वक्ष सब से ज्यादा पसन्द था. यदि अम्मी का डर न होता तो वह नीचे तक खुले ब्लाउज पहन कर घूमती.

एकान्त ने हर चीज में रंगीनी भर दी...

रेडियो पर शास्त्रीय संगीत शुरू हुआ और दौड़ कर उस ने उसे बन्द कर दिया. छी:! कला के नाम पर कैसे गला फाड़ते हैं! इस से लाख गुना अच्छी आवाज तो मेरी है. और उस के होंठों पर गुनगुनाहट आ कर आंखें मुलमुलाने लगी...जिन की निगाहों ने घायल किया...

पलंग पर पड़ कर उस ने आंखें मूंद लीं. उस का ध्यान दरवाजे की ओर गया जिस की कुंडी लगी हुई थी. यह उसे बिलकुल अच्छा न लगा. उस ने उठ कर कुंडी खोल दी. दरवाजे को थोड़ा सा खोल कर उस ने आंगन में झांका जहां सन्नाटा आलसी अजगर की तरह

लेटा हुआ था. उस ने दरवाजों को भेड़ दिया और बिना कुंडी लगाए पलंग पर आ कर पड़ रही.

पलंग पर गिरते ही उसे एक उलझन ने घेर लिया क्योंकि वह समझ न पाई थी कि उस ने दरवाजे की कुंडी खोली तो आखिर क्यों...

जो हो, खुली कुंडी को अब वह फिर से बन्द नहीं करेगी...

समय काटने के लिए वह बहुत देर तक दराज से अपने आकर्षक फोटोग्राफ्स निकाल कर देखती रही...सन्तोष के झाग में वह नहा उठी...

उसे एक अजीब सी कल्पना आई...इस घर में कोई ऐसा व्यक्ति भी होना चाहिए जो केवल उसे निहारता रहे... निहारता रहे ... कोई अनजाना व्यक्ति...फिर भले वह बदसूरत ही क्यों न हो...

उस ने अपने से कहा, छीः.... मैं कितनी गन्दी बातें सोचने लगी हूं. लेकिन सोचने पर उस का बस नहीं था. वह सोचती गई और सोचती गई...न चाहते हुए भी चाह कर सोचती गई.

हालांकि उसे नींद नहीं आ रही थी लेकिन उस ने अपनी पलकों को मूंद लिया और चुपचाप यों ही लेटी रही मानों सचमुच सोई हुई हो.

कमरे में खिड़की के कांच के आरपार उजाला आ रहा था. उस के कारण वह अपनी मुंदी पलकों में रस की तरह भरे लहू का आभास पा रही थी. अब वह कुछ देख न सकती थी, बस केवल अपने आसपास की आवाजें सुन सकती थी.

एक चिड़िया थी—पता नहीं वह कितनी बड़ी थी और नर थी या मादा थी—लेकिन एक चिड़िया थी जो कमरे में थी और चहचहा रही थी. कभी उस के माथे के ऊपर, कभी पांवों की

ओर, कभी अगल, कभी बगल—वह आवाजों के उन छोटेछोटे टुकड़ों को जीवित वस्तुओं की भांति महसूस कर रही थी. कभी वह चहचहाहट शचि के बिलकुल पास आ जाती थी, कभी दूर चली जाती थी.

चिर्र ..

सड़क पर कोई अबाबील अपने लम्बे, काले पंख फड़फड़ाता हुआ तीर की तरह निकल गया.

पफ! पफ! पफ!

कोई तांगा दूर से गुजरा जिस के घोड़े की टापें गेंद की तरह उछलती हुई कमरे के भीतर आईं. शचि को लगा मानों उन हल्की-हल्की गेंदों ने उसे छुआ... हाथ पर, पैर पर, कमर पर, सीने पर... हर जगह ..

मुंदी आंखों के कारण उस के कान बहुत तेज हो गए थे. कई बार ऐसा होता कि कहीं से भी कोई आवाज न आती और खामोशी के कई सर्द कतरे फिसलते हुए निकल जाते...

कुछ मिनटों के बाद शचि को ऐसा लगा मानो उढ़के हुए दरवाजों को किसी ने खोला...धीमे से...हौले से...

शचि को खौफनाक उत्सुकता हुई कि भड़ाक से अपनी आंखों को खोल दे और देखे कि कौन है. लेकिन उस ने आंखें न खोलीं. वह चुपचाप लेटी रही मानो सचमुच सो रही हो. उस के कान बेहद तेज हो गए. उन में खून का प्रवाह बढ़ गया जिस से उन में थिरकन पैदा हो गई. उन के छोरों में गर्मी आ गई. कई बार शचि को लगा, वे थोड़ाथोड़ा हिल भी रहे हैं.

खट! खट!

दो कदम! उस व्यक्ति, उस अनदेखे व्यक्ति के दो कदमों की आवाज कमरे में छत तक भर गई.

शचि को एक बात का निश्चय हो गया कि यह व्यक्ति घर का आदमी नहीं. यदि घर का आदमी होता तो इस तरह हौले से दरवाजा खोलने की उसे क्या जरूरत थी? और यों दो ही कदम चल कर वह रुक क्यों जाता? तब कौन है वह? भीतर आने का साहस कैसे किया उस ने? कैसे पता चला उसे कि इन बन्द दरवाजों की कुन्डी खुली हुई है और केवल जरा से धक्के से इन्हें खोला जा सकता है?

खट!

एक और कदम. आगे या पीछे?

शचि का जी चाहा, अपने कोयों पर से पलकों को जरा सा उठा कर—बिलकुल जरा सा उठा कर देख ले कि यह कदम किधर लिया गया है. लेकिन वह ऐसा न कर सकी. उसे डर लगा कि कहीं उस अनदेखे व्यक्ति को पता न चल जाए, शचि जाग रही है. नहीं, शचि आंखें नहीं खोलेगी.

एक और बात पर शचि को बड़ा आश्चर्य हो रहा था. उसे जाने कैसे यह विश्वास हो गया था कि हौले से भीतर आने वाला यह व्यक्ति औरत नहीं है, बच्चा नहीं है, बूढ़ा नहीं है—बल्कि कोई युवक है. हो सकता है वह युवक काला और बदसूरत हो लेकिन है वह युवक. हौले से वह कमरे में आ गया है और जरूर उसे बेशर्मी से घूर रहा है.

खिड़की से हवा का एक झोंका आया और शचि के सीने से दुपट्टा खिसक गया. उस के एकएक अंग में अन्दरूनी फड़क पैदा हो गई. बड़ी मुश्किल से उस ने अपनी रगों को काबू में किया ताकि यह फड़क बाहर आ कर सचमुच उस के अवयवों को न फड़का दे. उसे लगा, वह मुसकरा पड़ेगी. उसे लगा, उस का चेहरा ललिया गया है. उसे लगा, उस के सीने में उफान आ रहा है और उस का ब्लाउज तंग हो रहा है. और

उसे लगा, उस का वक्ष किसी चीज से भीग गया है...उसे लगा...उसे लगा...

खट! खट! खट! खट! खट! खट!

छह!

छह कदम!

शचि ने कल्पना की, अब वह व्यक्ति उस के पलंग के बिलकुल पास आ गया होगा. बिलकुल पास...अब वह क्या करेगा? शचि को लगा, कहीं मैं रो न पड़ूं!

और उसे लगा, यह व्यक्ति बेवकूफ है. क्यों वह अपने जूतों से आवाज कर रहा है? क्यों नहीं वह एकदम चुपके से, बिलकुल हौले से उस के पास आ जाता और...और...

इस और के बाद की कल्पना शचि को न आ सकी.. न जाने वह क्या चाहती थी इस और के बाद.

फिर वह समझ गई कि यह व्यक्ति इसलिए अपने जूतों की आवाज कर रहा होगा कि उसे पता चल जाए, शचि सचमुच सोई हुई है या नहीं.

खट! खट! खट!

तीन आवाजें. नहीं, इस बार यह व्यक्ति आगे नहीं बढ़ा है. उस ने एक ही जगह से आवाजें कर के शचि की नींद को ठोकबजा कर देखा है. शचि को लगा, वह उबल रही है...

खामोशी...

और...और...शचि ने महसूस किया, उस के मुलायम गोरे गालों पर किसी की हल्की सांस टकराई...गर्म...मादक...अनजानी सांस!

फिर...

फिर किसी ने हौले से उस के कपोल को छुआ... किसी की उंगली की पोर ने उस की लट को सहलाया...मानो रुई का कोई फाहा उसे छू रहा हो...

खिड़की से हवा का एक और झोंका आया और शचि का दुपट्टा, जो पहले से ही खिसका हुआ था, जब उड़ कर पलंग के नीचे जा गिरा.

सांस की वह छुअन अब और स्पष्ट हो गई...शचि को उस व्यक्ति का चेहरा अपने चेहरे से बिलकुल सटा हुआ लगा...उफ! शचि की पलकें अभी तितली के पंखों की तरह फड़फड़ा उठेंगीं! फिर...फिर वह क्या करेगा?

लेकिन नहीं, शचि आंखें नहीं खोलेगी...जाने क्यों...शचि जल रही है...शचि उबल रही है...शचि फट रही है.. और...और ...शचि तो सो रही है! बिलकुल निश्चिन्त! उसे कुछ पता थोड़े ही है!

और शचि को लगा, बिलकुल ऐसा लगा जैसे किसी ने उसे उठा कर बांहों में भर लिया और चूम लिया और चूम कर फिर चूम लिया और फिर चूम लिया...कपोलों पर...होंठों पर...गालों पर... गर्दन पर. शचि की छातियां उस अनजाने सीने से दबीं...उसे लगा, उस की छातियों पर पुते गीलेपन से वह सीना भीग गया और उस सीने के कुछ किरकिरे घुघराले बाल आ कर उस की छातियों पर चिपक गए...

शचि भयानक भूल कर रही है.. शचि मुसकरा रही है... शचि को मुसकराना नहीं चाहिए...कोई भी ऐसी हालत में न मुसकराएगा...वह केवल कुसमुसाएगा...शचि को भी केवल कुसमुसाना चाहिए

...लेकिन वह मुसकरा रही है...

तुरन्त उस की छातियां उस सीने से अलग हो गईं. उस के इर्दगिर्द सावधानी से घिरी वे बांहें सरक गईं. उसे लगा, एक मादक झटके के साथ उस की पीठ वापस पलंग से जा लगी है...

दरवाजो की ओर बढ़ते कदमों की बहुत धीमीधीमी आवाजें जल्दीजल्दी हुईं...उढ़के दरवाजे खुले और बन्द हुए...

शचि को लगा, एकदम वह पलंग से नीचे कूद पड़े और...लेकिन उस ने आंखें भी न खोलीं. बहुत देर तक वह यों ही पड़ी रही...चुपचाप...बिना हिलेडुले...मानो सचमुच सो रही हो. उसे आशा थी, वह व्यक्ति फिर से आएगा...

लेकिन काफी देर तक वह न आया. शचि ने धीरे से अपनी पलकें उठाईं. कमरे में कोई न था. उस की दृष्टि छत पर टिक गई जहां नुमाइश से खरीदी गई बांस की एक गुड़िया काले धागे से लटक रही थी. हवा चलने से वह पास की दीवार से टकरा रही थी और छोटीछोटी आवाजें हो रही थीं— खट! खट!

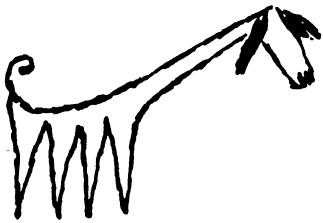

कसबे का जानवर

उस कसबे में एक खासियत यह थी कि वहां एक भी कुत्ता नही था. अन्य जानवर, जैसे : बकरी, गाय, सुअर आदि खूब थे लेकिन जाने क्यों कुत्तों ने उस कसबे को अपनाया नहीं था. कुत्ता होने से रात में जरा राहत होती है. सन्नाटा कभीकभार उस की भूंक से दरकता तो है. एक से अधिक कुत्ते हो तो और अच्छा. एक कुत्ता भूंकता है तो दूसरा जवाब देता है और दूसरे के जवाब के जवाब में पहला फिर से भूंक पड़ता है.

लेकिन क्योंकि एक अरसे से कसबे में कोई कुत्ता नही था, लोगों को अब इस की आदत पड़ गई थी. बल्कि औरतों ने तो इसे भगवान की दया ही समझना शुरू कर दिया था कि कसबे में कुत्ता नहीं था. कुत्ता रात को भूंक पड़ता है तो बच्चे चौक कर डर जाते हैं. फिर उन्हें चुप कराना कितना मुश्किल होता है.

परन्तु एक रात जब किसी कुत्ते की भूंक अचानक सन्नाटे की पर्तें दरकाती हुई वातावरण में हहक उठी और उस भूंक ने कई बच्चों को बुरी तरह डरा कर चौंका दिया तो दूसरे दिन वह अनदेखा कुत्ता स्त्रीपुरुषों की जबान पर चढ़ गया. जिसे देखो, जिधर देखो, एक ही बात : मुहल्ले में कुत्ता आया है.

बिशनू ठाकुर हुक्के को कशिया कर बोले—"आवाज से झबरा मालूम पड़ता है."

बिशनू ठाकुर कुत्तों की भूंक की बहुत पहचान रखते थे—लोग चाहे इसे स्वीकारें, चाहे न स्वीकारें. एक जमाना था, उन के यहां चार झबरे पलते थे. रोज सुगन्धित मांस खाने दिया जाता और लक्स से नहलाया जाता. लेकिन जमींदारी क्या गई, सारे शौक मटिया गए. तीनों कुत्तों को जाने कहां से खाज लग गई जो उन की जिन्दगी से मुहब्बत कर बैठी. बड़ा लड़का रंडीबाजी में फंसा और सारा धन फूकझाड़ गांव की एक लौंडिया के साथ भाग गया.

एक व्यक्ति ने कहा—"दिखाई पड़े तो पता चले, झबरा है या नहीं."

"सो तो है ही."—ठाकुर बोले.

लेकिन जब पूरा दिन बीत गया फिर भी किसी को वह कुत्ता दिखाई न पड़ा तो उस की रहस्यमयता बढ़ गई. तरहतरह की बातें उठी : शायद किसी और कसबे में चला गया हो—बस, एक ही रात के लिए यहां आया हो...

दो रातें खामोश बीतीं. बात आईगई हो गई. परन्तु तीसरी रात को फिर से बारहएक के करीब वही रहस्यमय भूंक वातावरण में हहक उठी. इस बार भी उस भूक के जवाब में बच्चों ने सहमसिहर कर अपनी माओं को टेरा.

उस कुत्ते को देखने का सब से पहला सौभाग्य बिशनू ठाकुर को ही प्राप्त हुआ परन्तु प्रसन्नता की बजाय उन के चारों ओर घोर निराशा का बादल घिर आया. उन्होने देखा, वह झबरा नहीं था.

वह ठीक उन के दरवाजे के सामने एक घूरे पर लेटा हुआ था. उस की नींद उड गई थी और पपोटों के नीचे से उस के खुमारी

भरे कोए झांक रहे थे. ठाकुर को देखते ही वह उठ खड़ा हुआ. उस ने अपनी दुम फटकारी, अगले पंजे से थूथने पर जमी आलग की पर्त को पोंछा और ठाकुर को उपेक्षा से अंखिया कर एक ओर चला गया.

कुत्तों के शौकीन होते हुए भी उसे देख कर ठाकुर के मन में उत्साह न आया. उस के द्वारा हुई उपेक्षा उन्हें चुभ गई.

कुछ दिनों के बाद उस कुत्ते का नाम आप ही आप कालू पड़ गया. उस की भूंक की भी सब को आदत पड गई. उस के आने के पहले उस की अनुपस्थिति किसी को खलती नही थी—अब उस की उपस्थिति भी कोई महत्वपूर्ण बात नहीं थी. अब वह रहस्य या उत्सुकता का पात्र नही रह गया था.

लेकिन कालू के साथ विडम्बना यह थी कि पूरे कसबे में इकलौता होते हुए भी उसे किसी ने पाला नहीं था. वह आवारा बन योंत्यों कसबे में घूमा करता. लोग उस के सामने रोटियां डाल देते, वह खा लेता, पूंछ पटपटा देता और चल देता. कसबे का जानवर होने के नाते उस की उदरपूर्ति हो ही जाती थी. उसे किसी की गरज नहीं थी, किसी को उस से विशेष प्यार नही था.

वैसे लोगों ने आशा जरूर की थी कि कालू को बिशनू ठाकुर पाल लेंगे. ठाकुर को कुछ लोगों ने इशारा भी किया था लेकिन ठाकुर मुकर गए. जाने क्यों, कालू उन्हें जरा भी न सुहाता था.

एक दिन ठकुराइन ने कालू को रोटी देते समय देखा कि

उस के गले में एक छोटा सा फोड़ा हो गया है. रात को उन्होंने ठाकुर से जिक्र किया—"कालू के गले में फोड़ा हो गया है."

ठाकुर को सहानुभूति तो नहीं पर उत्सुकता अवश्य हुई. "फोड़ा?"

"हां,"—ठकुराइन ने कहा—"बड़ा खतरनाक होता है ऐसा घाव."

"हुं .."—पानी का घूंट पी कर ठाकुर ने डकार ली. ठकुराइन को तेज निगाहों से देख उन्होंने बिना कहे ही कह दिया —'तो मैं क्या करूं?'

ठकुराइन के मन में एक बात उठघुट कर रह गई.

दोएक दिनों में कालू का फोड़ा काफी बड़ा हो गया और उस मे बेचैनी आ गई. लोगों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और चर्चा भी जगी लेकिन वह बहुत थोड़ी थी और उस में उत्सुकता का भाव अधि कथा. परन्तु जब फोड़ा थोड़ा और पसरा तो बिशनू ठाकुर पर एक दो व्यंग्य हो गए—"अब तो ठाकुरों का भी पानी गया. एक जमाना था, चार झबरे पला करते थे, आज एक का भी इलाज तक..." ठाकुर कुढ़ कर रह गए. कालू के प्रति उन का मन और खट्टा हो गया. ठकुराइन ने भी जब कुछ ऐसी ही बात कही तो उन की भभक बाहर आ गई. बोले— "क्या कसबे का जानवर कसबे का जानवर लगा रखा है. मैं ने क्या किसी का उधार खा रखा है जो कालू का इलाज कराऊं! बिलकुल जबर्दस्ती!"

ठकुराइन क्या कहतीं. ठाकुर को क्या, दिन भर बाहर रहते हैं. मुहल्ले में रहते होते, पता चलता, कालू को ले कर पड़ोसियों में क्याक्या बातें हो रही है. सभी ठाकुर की आलोचना कर रहे थे कि अब उन के मन की दया मर चुकी. कहां पहले चारचार झबरों को

रोज मांस...कभी लोगों का रोष ठाकुर से हट कर ठाकुर के बेटे पर आ जाता जिस ने ठाकुर की सारी सम्पत्ति उड़ाफूक दी थी और अब उस लौंडिया के साथ पता नहीं कहां, क्या कर रहा था. जो हो, लोगों की यह धारणा बन चुकी थी, कालू के फोडे का इलाज ठाकुर को ही करवाना चाहिए. उन्हें आखिर फाके तो लग नहीं रहे हैं कि इतना सा भी खर्च न कर सकें.

ठाकुर झुंझलाहट के साथ सोचा करते—'असल बात यह है कि मेरी आलोचना की आड़ में लोग अपना खर्च बचा रहे हैं. कालू से इतनी ही माया है तो क्यों नहीं कोई माई का लाल आ जाता आगे! मैं ही क्यों करवाऊं उस की दवा!'

कुत्ते पालने का उन का शौक अब गरीबी के पाटों में आ कर आटा हो गया था जिसे अभावों की हवा ने जाने कहां, किधर; उड़ा, बिखेर दिया था. कालू के प्रति स्नेह तो पहले ही दिन से चुक गया था, अब उस के कारण होती बौछार ने ठाकुर के मन में नफरत के बीज जमा दिए थे.

कालू का फोड़ा दिन ब दिन फैलता, गहराता गया. उस में मवाद पड़ गया और घिनौनी बू भी आने लगी. उस का भूंकना अब बिलकुल लटक गया था और वह केवल रिरिया कर रह जाता था. रात की खामोशी में उस का दर्दीला स्वर लड़खड़ाता हुआ लोगों के दिलों के दरवाजे खटखटाता, मदद की टेर लगाता. और उस दिन तो ठकुराइन ठाकुर से लड़ने को तैयार हो गई जब उन्हें पता चला कि कालू का इलाज रामभरोसे कराएगा. बिशनू ठाकुर की ओर हाथ नचा कर ठकुराइन चीखीं—"इज्जत का भी कुछ ख्याल है! रामभरोसे कालू का इलाज कराएगा और तुम चुप बैठे रहोगे! पड़ोसिनों ने दिल छलनी कर ही रखा है, अब तो बाहर निकलना भी हराम हो जाएगा."

ठाकुर को भी बात खटकी जरूर. इसी रामभरोसे ने कभी उन के पैरों पर नाक रगड कर तीन सौ का कर्ज मांगा था. और वही आज...दूसरे ही दिन ठाकुर ने घोषणा कर दी: कसबे का जानवर मेरा जानवर है. मेरे रहते कौन...

बैलगाड़ी जोती गई. ठाकुर बैठे और तीन मील दूर के बड़े कसबे की ओर चल पड़े जहा मनुष्यों और जानवरों दोनों को चंगा करने वाला एक डाक्टर रहता था. कुछ घंटों में वह कम्पाउंडर को साथ ले कर वापस लौटे. कालू को दोचार लोगों ने कस कर पकड़ा और कम्पाउंडर ने सड़ा मांस काट दवा लगा कर पट्टी बांध दी. कालू खूब चीखा, उछला. पकड़ने वालों में एक ठाकुर भी थे. उन के चेहरे पर कालू का पजा लगा और खून की तीन लकीरें चमड़ी के आरपार बाहर छन आई. भयानक क्रोध से उन की पसलियों में कुरेदन भर गई लेकिन किसी तरह उन्होने अपने को सम्भाला.

दूसरे दिन कम्पाउडर को देख कर कालू भागा नहीं. जानवर होते हुए भी वह समझ गया था, यह सब मेरे भले के लिए हो रहा है. वह ज्यादा उछलाकूदा भी नही. पट्टी बंधवाता रहा.

कालू धीरेधीरे ठीक होने लगा. जब इलाज के बीस दिन बीत गए तो ठाकुर ने ठकुराइन को घुड़का—"जानती हो कितना खर्च हुआ? पूरे पन्द्रह रुपए! सारा तुम्हारे कारण हुआ."

पन्द्रह रुपयों की बर्बादी ठकुराइन को भी खल रही थी. ठाकुर के वाक्य ने उन के घाव पर नमक का बुरादा छिड़क दिया. ऊंचे स्वर में दोनो काफी झगड़े. फिर दोनों में सुलह हो गई और उन्होने तै किया कि कालू पर पन्द्रह रुपयों से अधिक खर्च नहीं किया जा सकता.

कालू का फोड़ा करीबकरीब भर चुका था. ठाकुर ने इलाज बन्द करवा दिया. किसी ने कुछ टोका भी तो तड़ाक से जवाब दे दिया—"फोडा भर तो गया है. थोड़ा बचा है सो अपने आप ठीक हो जाएगा."

इलाज बन्द होने के एक सप्ताह तक कालू का फोडा वैसे का वैसा बना रहा. इस के बाद फिर से उस में सडन शुरू हो गई. तीन दिनों में फोड़ा फिर से पहले की ही तरह टपकने लगा...लोगों ने ठाकुर पर तरस खाना शुरू कर दिया—'इलाज करवाना था तो पूरा करवाना था. यह क्या कि थोडा अच्छा हुआ और बन्द करवा दिया. इस से तो अच्छा था न ही करवाते'

ठाकुर अपने होंठ काटते, मुट्ठियां भींचते, पर दिनबदिन कालू का फोडा बढ़ता ही जा रहा था ..बू! मवाद! सड़न! कराहें! और फिर से रामभरोसे ही इलाज के लिए सामने आया. ठाकुर तिलमिला गए. नहीं, यह नहीं हो सकता. रामभरोसे को बुलवाया, खूब डांटाडपटा, भगा दिया.

फिर से ठाकुर ने इलाज शुरू करवाया. कालू ठीक होता चला. लेकिन ज्योंज्यों दिन बीतते जा रहे थे, ठाकुर के मन में अन्धकार घिरता जा रहा था. इज्जत खरीदने के लिए रुपयों की बर्बादी उन्हें महंगी पड़ रही थी. और इस बार भी कालू जब करीबकरीब ठीक हो गया तो उन्होंने इलाज रुकवा दिया.

बौछार होनी थी, हुई. ठाकुर ने कान न दिए. कालू का फोड़ा कुछ दिनों तक अधभरा रहा, उस के बाद वह फिर से सड़ने लगा. और अब की हमला बहुत करारा था. गर्दन गल कर बिलकुल पोली हो जाने लगी. उस की चमड़ी के बाल झड गए और पसलियां बुरी तरह उभर आईं. और फिर से कालू ठाकुर के

ही पल्ले आ पड़ा...उसी तरह, रामभरोसे के कारण.

कालू की हालत बहुत बुरी थी. वह जमीन पर बिलकुल पसर गया था और हांफ रहा था. उसे उठा कर बैलगाड़ी में लादा गया. वह यों लटका हुआ था मानो गीले आटे का बना हो.

ठाकुर स्वयं बैलगाड़ी हाक रहे थे. उन का तेलपिया डंडा पास ही पड़ा था. उन के भीतर धुंआ घुट रहा था. गाड़ी हिचकोले ले रही थी, भीतर पड़ा कालू रह रह कर रिरिया उठता था. उस की पतली आवाज तेज चाकू की तरह ठाकुर के जलेभुने दिल के आर-पार निकल रही थी...धुंआ! घुटन! रिरियाहट!

कसबा काफी पीछे छूट गया तो ठाकुर ने गाडी रोक दी. आसपास नजर फेरी. कोई न था. उन्होंने अपना डंडा हाथ मे लिया और कालू के पास सरके.

'सर फोड़ दूं?'—उन्होंने सोचा—'नहीं, सर फोडने से खून निकलेगा और बात पकड में आ जाएगी. पेट पर वार करूं? वहां खून न निकलेगा.'

तड़ाक से डंडे का पहला वार कालू के पेट पर हुआ. कालू ने हल्के से रिरिया कर आंखे चढा ली. ठाकुर ने उस की रानों तथा पसलियों पर कई वार किए—भरपूर वार. हर वार के साथ ऐसी आवाज होती, मानो भूसा भरी हुई बोरी पर चोट पड़ी हो.

ठाकुर ने बैलों की पूंछ उमेठ कर उन्हें वापस कसबे की ओर मोड़ दिया. शाम के धुंधलके के पहले ही वह कसबा पहुंच गए.

सामने से रामभरोसे आता दीख पड़ा. उस ने पूछा—"बड़ी जल्दी लौट आए ठाकुर? डाक्टर ने क्या कहा? कालू को अस्पताल में भरती करना पड़ा?"

"नहीं."—ठाकुर ने कहा—"कालू रास्ते में ही मर गया."

"लाश कहां है? रास्ते में फेंक दी?"—सहानुभूति और दुख की च च करने के बाद रामभरोसे ने प्रश्न किया.

ठाकुर मुसकरा पड़े—"क्या मुझे इतना जल्लाद समझते हो? कैसे फेंक आता. कसबे का जानवर तो कसबे में ही दफनाना चाहिए. साथ लेता आया हूं."

रामभरोसे ने आगे बढ़ कर गाड़ी में झांका.

भीतर कालू जिन्दा था. उस ने अपनी दर्दीली आंखें, जो कुछ समय पहले चढ़ गई थीं, अब नीचे उतार ली थीं और गाड़ी की छत की ओर ताकता हुआ हांफ रहा था. *

* 'सरिता'

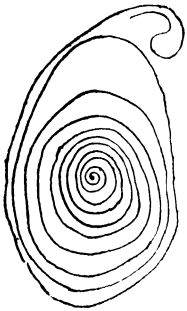

मत छुओ

रात्रि के अन्धकार को दरकाती हुई ट्रेन दौड़ रही थी. पेड़, झाड़िया, नदी, नाले, पहाड़ियां—सब काले लिफाफे में बन्द हो कर दुबक गए थे. अन्धेरे में एंजिन द्वारा उगली गई चमकदार लाल चिनगारियां तेजी से खिड़की के सामने से गुजर रही थी.

प्रवीर की आंखें चकों के नीचे से फिसलती जमीन पर टिकी हुई थीं. खिडकी के चौखटे पर उस ने माथा टिका दिया था. बालों की सूखी लटें कपार पर छितरा गई थीं. डिब्बे के भीतर जल रहे बल्बों का प्रकाश खिडकी की राह चौकोर आकारों में बाहर पड़ रहा था. जमीन पर वे चौकोर आकार कभी ऊपर उठ आते, कभी नीचे चले जाते, कभी चिड़िया की तरह फड़फड़ाने लगते, कभी बिलकुल स्थिर हो जाते—उन की यह जादूभरी थिरकन तेजी से भागती जमीन के ऊबड़खाबड़ या सपाट होने के कारण थी.

प्रवीर की आंखें प्रकाश के उन चौकोरों की आंखमिचौनी पर टिकी थीं. उसे याद आया, भरतपुर के लिए रवाना होने के पहले वह कितनी देर तक किशी की याद में डूबा हुआ कसबे के उस तालाब के किनारे बैठा रहा था...

डिप्!

तालाब के शान्त पानी में उस ने यों ही एक कंकड़ फेंका था जो डिप् की आवाज के साथ तली में चला गया था. जहां वह डूबा था वहां से पानी के गोल, लहरीले छल्ले उठ कर दूरदूर तक फैल गए थे...और प्रवीर देखता रह गया था उन छल्लों को...

किशी...

हां, यह किशी की खास आदत थी. दोनों एकदूसरे से सट कर एकान्त में देर तक बैठे रहते थे...इसी तालाब के किनारे...फिर किशी कोई कंकड़ उठा कर पानी में डाल देती थी...

डिप्!

पानी की सतह हंसने लगती थी मानो...

पानी के वे गोलगोल छल्ले—ठीक किशी के वक्ष की तरह गोल—और इसीलिए वे प्रवीर को इतने प्यारे, रंगीन, जीवित से लगते थे.

जब किशी की शादी हो गई और वह अपने धनी लेकिन बेवकूफ पति के घर चली गई तो प्रवीर उसी तालाब के किनारे उसी जगह जा कर बैठा करता और शान्त पानी में एक कंकड़ फेंकता... डिप्! लहरीले, गोलगोल जीवित छल्ले—थिरकते, तैरते हुए और भरे-भरे...ठीक किशी के वक्ष की तरह. और वह उन्हें जाने कब तक देखता रहता. क्रमशः वे छल्ले शान्त हो जाते और...डिप्! वह फिर से पानी में नया ककड़ छोड़ देता. मानों किशी के वक्ष को, जो केवल उस के लिए था, उस ने दूसरी बार छुआ हो...

प्रवीर ने स्मृतियों के भंवर से अपने को उबारने की चेष्टा करते हुए माथे को एक झटका दिया. बाल की लटों में उंगलियां पिरो कर उस ने उन्हें ठीक करने की चेष्टा की लेकिन हवा के झोंकों ने उन्हें फिर से छितरा दिया.

तो वह किशी से मिलने जा रहा था. उस के ससुराल जाने के पूरे सात माह बाद.

'किशी एक कायर लड़की थी.'—वह मन ही मन बुदबुदाया—'वह विद्रोह करना नहीं चाहती थी. मातापिता के दबाव में आ कर उस ने उस बेवकूफ सेठ से शादी कर ली. एक घिसीपिटी कहानी जो हजारों बार लिखीपढी और देखीसुनी गई है...'

और फिर से उस की आखों के सामने पानी के वे छल्ले तैर उठे...छल्ले, जो उसी तरह भरेभरे और धड़कते हुए थे जिस तरह किशी का व...

गुस्से की एक भयानक सिहरन प्रवीर की रगरग में दौड़ गई. तो वह फूहड़ सेठ किशी को चूमता होगा. किशी लाचारी से उस के आगे समर्पण करती होगी...और दो फूहड़ हाथ टटोलते होंगे उस के...

लगा प्रवीर को, जोर से चीखे, चारों ओर तोड़फोड़ मचा दे...नही! किशी की उन गोलाइयों को प्यार करने का अधिकार केवल मेरा है...

डिप्!

पानी के छल्ले...जिन्दा छल्ले...स्मृतियों के भंवर...

आवेश के कारण उस की आखें भर आईं और डिब्बे की वह खामोश, सोई हुई दुनियां डबडबाने लगी. मानो पूरा डिब्बा एक बडा भारी तालाब हो जिस का शान्त पानी किसी ने अचानक हिला कर मटमैला कर दिया हो...हर चीज कांपने लगी...

भरतपुर के साधारण से स्टेशन पर उतर कर प्रवीर ने

अपना बैग वेटिंग हाल में पटका और एक गहरा सांस छोड़ कर सीमेन्ट के कठोर बेंच पर बैठ गया. रात भर उसे नीद न आई थी. थकान दोगुनी हो गई थी यहां तक पहुंचतेपहुंचते. दोनों पलकों पर जैसे मन भर का बोझ...

बेंच पर आध घन्टे की चौकन्नी नीद लेने के बाद वह स्वस्थ हो पाया. बैग खोल कर उस ने वह पत्र बाहर निकाला जो उस के सेठ ने किशी के पति के नाम लिख कर दिया था.

प्रवीर ने किशी के विवाह के बाद अनाज के एक व्यापारी के यहां मुनीमी कर ली थी. सेठ ने व्यापार के सिलसिले मे उसे अपना प्रतिनिधि बना कर भरतपुर भेजा था और जिस के पास भेजा था वह और कोई नहीं, स्वयं किशी का पति था.

प्रवीर को दो दिनों तक भरतपुर ठहरना था. किशी के ही यहां उस के खानेपीने का प्रबन्ध कर दिया जाए, इस आशय का यह पत्र सेठ ने प्रवीर को दिया था.

प्रवीर ने पर्ते खोल कर पत्र को पढ़ा, पता नही कौन-सी-वीं बार. फिर एक गहरा सांस छोड़ कर उसे भीतर रख दिया. क्लिच! पेटी का ताला बन्द करते समय उस ने सोचा, किशी किस बुरी तरह चौकेगी मुझे अचानक देख कर.

धूप चढ़ आई थी. सुबह के स्वागत में चिड़ियों द्वारा मचाया गया शोर छीज गया था. प्रवीर ने तांगा किया और न्यू मंडी की ओर रवाना हो गया जहां किशी के पति की आलीशान दुकान थी.

"ओहो! आप हैं!"—किशी के पति ने, जिसे प्रवीर ने शादी के मडप में नफरत से देखा था, उस पत्र को पढ़ते ही खिलते हुए

कहा. प्रवीर ने देखा, इन सात माहों में वह बेहद फूल गया था.

उस के नहानेधोने का प्रबन्ध कर दिया गया.

दोपहर को उस ने किशी को, किशी ने उसे पहली वार देखा. पति की उपस्थिति में किशी चौक नही सकती थी. चौक कर भी न चौकने का उस ने सफल अभिनय किया.

वह सिर झुका कर चुपचाप भोजन करता रहा. किशी के पति की आंखें बचा कर उस ने किशी के चेहरे की ओर ताका, फिर उस की निगाहें किशी की गर्दन के नीचे फिसली. ढीले पल्लू में वह कोई आभास न पा सका. डिप्!...पानी के छल्ले...किशी के चेहरे से भी अधिक प्यारे वे गदराव ..

रात्रि के अन्धकार में दो छायाएं उभरी. अन्धेरे में थोड़ी देर तक इधरउधर भटकने के बाद उन्होने एकदूसरे का आभास पा लिया. वे करीब सरकीं.

"किशी!"—प्रवीर की फुसफुसाहट का गर्म स्पर्श किशी के सावधान कानों पर हुआ.

"प्रवीर!"

प्रवीर ने उस का हाथ थाम लिया. सनसनी की एक तेज लहर ने उन दोनों को भिगो दिया. और जब प्रवीर ने...

"नहीं."—किशी अलग हो गई—"मत छुओ..."

"क्यों?"

दूर झीगुर बोल रहे थे. अन्धेरी रात में तारे अपनी आंखें मुलमुला रहे थे. जिस झाड़ी की ओट में वे खड़े थे वह लापरवाही से सोई हुई थी. एक पगडंडी, जिस के दोनों छोर अन्धेरे से उभर कर अन्धेरे में खो रहे थे...

"क्यो?"

"यों ही."

"लेकिन आखिर क्यों? मैं ने कई बार पहले भी..."

"अब नहीं."

प्रवीर ने एक गर्म नि श्वास छोड़ा. तो जिन के कारण वह किशी को इतना प्यार करता था—है, उन्ही को किशी नहीं...

अचानक उत्तेजना ने प्रवीर को झुलसा दिया. उस ने किशी को चूमा, स्निग्धता से, और...

बड़ा अजीब सा, सूना सा, रूखा सा लगा उसे. वे गर्म और मादक नहीं थे. मानो किसी पुरुष की छाती पर आटे के दो बड़ेबड़े पिंड दूर से फेंक कर चिपका दिए गए हों...

उस ने उन्हें छोड़ दिया. किशी के गालों को उस ने छुआ तो वे गीले थे. किसी तरह वह बुदबुदाया—"रो रही हो किशी?"

"मैं ने कहा था मत छुओ और तुम ने..."

वापस मुड़ कर वह तेजी से भागी. अन्धेरे ने उसे खा लिया.

वही ट्रेन. वैसी ही रात. खिड़की पर प्रवीर का माथा टिका था. कल्पना में एक चित्र उभरा...तालाब...ख़ामोश पानी—प्रवीर ने उस में एक ककड़ फेंका. डिप् हुई लेकिन केवल डिप् हुई, बस! सतह पर छल्ले न तैरे.

और उस ने महसूस किया, किशी मर चुकी है.

४३वां युधिष्ठिर

यह कठफोड़वा! मेरे भीतर का यह कठफोड़वा! दिनरात यह मुझे भीतर से चोंचें मारता रहता है...तुम नीच हो...तुम कलंकी हो...तुम...तुम...

इस से छुटकारा कैसे पाऊं? इसे कभी नींद भी तो नहीं आती.

...लग रहा है, जिन्दगी एक सड़क है जिस के एक छोर पर मैं खड़ा हूं और दूसरे छोर से धुआं उठ रहा है. यह धुआं एक विराटकाय रोडरालर का है जो खड़खड़ खड़खड़ मेरी ओर बढ़ रहा है...उस की चाल बड़ी धीमी है लेकिन वह नियमित और अपरिवर्तनशील है. बीचबीच में जब मैं बीमार पड़ जाता हूं तो वह रोडरालर जोरदार सीटियां देता है...मैं आ रहा हूं...मैं आ रहा हूं ..

मैं आने से उसे नहीं रोक सकता. न इस सड़क से उतर कर कहीं भाग सकता हूं, क्योंकि यह सड़क जिन्दगी की सड़क है जो रहस्यमय अन्धकार में अद्धर लटक रही है. भय से कांपता मैं इस के अन्तिम छोर पर खड़ा हूं जहां से और पीछे नहीं हटा जा सकता. इस कगार से जरा भी पीछे झुका तो गिर पड़ूंगा. कभीकभी मैं अपना काबू खो देता हूं और चीखता हूं. चीख उस रोडरालर तक जाती है और वह प्रसन्नता से सीटी बजाता है.. मैं आ रहा हूं ..मैं आ रहा हूं...

कई बार मैं भय के मारे इस सड़क की अद्धर लटक रही कगार से सरकस के खिलाड़ी की तरह झूलने लगता हूं. कूद पड़ूं? कूद पड़ूं इस अन्धकार में जिस का ओरछोर मुझे पता नहीं है? कैसा लगेगा? पता नहीं कैसा लगेगा. शायद कूदते ही मैं गायब हो जाऊंगा. अन्धकार में हर चीज केवल अन्धकार हो जाती है न.

लेकिन कूदूं कैसे? कूदना मेरे बस की बात नहीं है. केवल सोचता हूं, पर कूद नहीं सकता; मैं अपनी कमजोरी पहचानता हूं. अपने प्रति यह मोह!

उस रात जब मैं आधा सोया हुआ था तो वह खड़खड़ बहुत तीखी हो गई. रोडरालर की गति बहुत तेज हो गई थी और वह बारबार सीटियां बजा रहा था. वह धुंआं भी खूब उगल रहा था. भय से मैं पीछे हटा और सड़क के आखिरी छोर पर खड़ा हो गया. फिर मैं उस छोर को पकड़ कर नीचे झूल गया. केवल मेरे हाथों की दोनों उंगलियां जिन्दगी की सड़क को पकड़े हुए थीं और मैं नीचे लटक गया था. मैं सोच रहा था, रोडरालर का वह अनदेखा लेकिन खूंखार ड्राइवर दूर से देखेगा कि मैं सड़क के छोर पर नहीं हूं. मैं सड़क से नीचे की ओर लटक रहा हूं यह उसे पता न चलेगा और शायद तब वह अपने विराटकाय, तेल टपकते रोडरालर को वापस मोड़ लेगा. उस की खड़खड़ खड़खड़ दूर होती जाएगी और जब मैं देखूंगा कि अब लटकना छोड़ कर वापस सड़क पर आ जाने में कोई खतरा नहीं है तो मैं वैसा कर लूंगा. लेकिन...लेकिन वह खड़खड़ खड़खड़ पास...और पास आती गई. डर के मारे मैं फटने लगा. उंगलियों की ताकत पसीज कर पसीने के रूप में मेरी बगलों की ओर बहने लगी. कहीं सड़क मुझ से छूट गई तो?

मैं ने डोरों को पलकों से बाहर आने से रोकते हुए आसपास फैले रहस्यमय अन्धकार की ओर देखा जिस की छोटी सी एक आंख भी

न थी. मानो कोई खौफनाक राक्षस अपना मुंह उघाड़े लेटा हो और उस के दोनों खुले होंठ इतनी दूर हों कि मैं उन्हें देख भी न पा रहा होऊं और उस के मुह के भीतर के अन्धकार में लटक रहा होऊं...मेरे गिरते ही यह राक्षस अपना जबड़ा भेड़ देगा...राक्षस! जिस के होंठ भी जब इतनी दूर थे कि देखे न जा सकते थे तो उस की नाक, मूंछ, आंख जाने कितनी दूर ..

वह खड़खड़ खड़खड़ बिलकुल पास आ गई थी. रोडरालर के वजन से सड़क कांपने लगी थी. वह कंपकंपी, क्योंकि मैं सड़क से लटका हुआ था, मेरे जिस्म में, जो पहले से खुद ही कांप रहा था, घुसी. मेरा मुंह फट गया. मैं चीखना चाहता था लेकिन चीखने पर उस ड्राइवर को पता चल जाएगा कि मैं कहां लटका हुआ हूं. तब ध्यान से देखने पर वह मेरी उंगलियों को देख लेगा जो सड़क की ऊपरी कोर से मुझे लटकाए हुए थीं. वह खिलखिला कर हसेगा और मुझे बाह से पकड़ कर सडक पर खींच लेगा. फिर वह मुझे सड़क पर लिटा देगा और मेरे ऊपर से रोडरालर चला देगा...खड़खड़ खड़खड़!

यदि बन्दर की तरह मेरे दुम होती तो भय से सिकुड़ कर वह मेरी टांगों के बीच दुबक गई होती जैसा कि कुत्तों के साथ होता है. उस से शायद भय कुछ कम हो जाता होगा.

वह खड़खड़ खड़खड़ पास आती तो गई लेकिन बहुत पास आ कर वह रुक गई. जिन्दगी की सड़क की कंपकंपी बन्द हो गई. मैं अपनी चीख को रोके रहा. कुछ देर के भयानक मौन के बाद वह खड़खड़ फिर से शुरू हुई और फिर से जिन्दगी की सड़क कांपने लगी. उस की कंपकंपी, साथ में मेरी भी, क्रमशः घटने लगी क्योंकि रोडरालर वापस लौट गया था. बहुत देर तक मैं कगार से नीचे के अन्धेरे में लटकता रहा. फिर सावधानी से अपने को जरा ऊंचे उठा कर मैं ने

सड़क पर झांका. रोडरालर काफी दूर लौट गया था. मैं अपनी रगों को झटका दे कर सड़क पर आ गया और बुरी तरह हांफने लगा.

मैं ने देखा कि मैं अपनी खाट पर उठ बैठा हूं और मेरे मुह के दोनों छोरों से लार टपक रही है. मैं पसीने में डूब गया हूं और मेरे बाल, जो घुघराले नहीं हैं, आंखों पर आ गए हैं. मेरी आंखों की पलकें कोई खा गया है. बाल भीतरी कोयों को छू रहे हैं. जलन के साथसाथ आंखों में गर्म पानी भी उभर रहा है. अचानक मेरी पलकें लौट आती हैं. मैं उन्हें झपकाता हूं. गर्म आंसू गाल पर बह कर नीचे टपकते हैं. गाल पर बनी गीली धारिया फौरन सूख जाती हैं क्योंकि गालो की गर्मी उन्हें भाप बना देती है.

लोगों को यदि पता चले कि उस रोडरालर से मैं कितना डरता हूं तो वे कितना हंसें. लेकिन पहले तो वे विश्वास ही न करगे और आश्चर्य से आंखें झपकाएंगे. फिर जब उन्हें पता चलेगा कि नहीं, वाकई यह बात सच है तो वे मेरी खिल्ली उड़ाएंगे और उस के बाद मुझ पर तरस खाएंगे.

लेकिन मैं क्या करूं. इस डर पर मेरा बस नही है. रात को मैं कुत्ते की तरह आधा सोता हूं, आधा जागता हूं. रोज की ऐसी बदसूरत नींद धीरेधीरे मेरा खून चूस रही है.

बचपन में कहानी सुनी थी कि एक डायन होती है. रात को छत पर चढ़ती है और खपरैल हटा कर भीतर झांकती है. फिर उस की बड़ीबड़ी आंखें, जिस की भौहें या बरौनियां नहीं होती, खुशी से चमकने लगती हैं क्योंकि वह भेड़ की लम्बी नस वहां से कमरे में लटका देती है. वह नस किसी को दिखाई नहीं पड़ती लेकिन वह आदमी की नाभि से जोंक की तरह चिपक जाती है. ऊपर से डायन उस का खून चूसती है...रोज...थोड़ा...थोड़ा...

यह नींद...वह डायन...

मैं ने तकिए को बांहों में भींच लिया है, मानों मैं अपनी मां से लिपट रहा होऊं. मैं रो रहा हूं क्योंकि तकिया खामोश है और उस की बांहें नहीं हैं जो मेरी पीठ के गिर्द भिंच सकें. न उस के होंठ हैं जो मुझे इतना चूम सकें कि मैं भूल जाऊं, इस दुनियां में हर रात नींद आती है और आते ही लगता है, सड़क के इस छोर पर मैं खड़ा हूं और उस छोर से भड़भड़ खड़खड़ की आवाज पास आती जा रही है...धीमेधीमे, पर रोज...

खननन!

एक स्मृति उभरती है...

दिल्ली के एक एयर कन्डीशन्ड रेस्तरां में अंग्रेजी धुनों की पंखीली लहरों में डूबा मैं बैठा हूं. बाय आता ही होगा. मैं ने कोका-कोला का आर्डर दिया है.

सामने दो विदेशी महिलाएं सिगरेटों और बातों में उलझी हुई हैं. धुन बहुत तीखी है, मैं पसन्द नहीं कर पा रहा हूं. चाहता हूं, रैकर्डप्लेयर पर कोई क्रूनर आ जाए और अपने हल्के, दबेदबे स्वरों को कंपाए ..

थ्रू आउट द' लैंड दे'रईज़ नन सो ग्रांड
आय वान्ट या आल टू सी
दिस ब्यूटीफुल कापर कालर
दैट द' कम्पनी गेव्ह टू मी!

बाय कब कोकाकोला रख कर चला गया है, मुझे पता नहीं क्योंकि मैं नक्काशीदार छत की ओर पनामा का धुंआं उड़ाता हुआ सोच रहा हूं, नींद इतनी डरावनी क्यों होनी चाहिए.

अब मेरी हथेली में ठंडी बोतल भिची हुई है और मैं देख रहा हूं कि कोकाकोला किस कदर लाल है...खून की तरह लाल.. मैं झुझलाता हूं. कुछ याद आ रहा है जिसे मैं बचकाना समझ कर याद नहीं करना चाहता हूं. बचपन में सुनी कहानियां बकवास होती हैं, मन को समझाता हुआ मैं एक सिप खींचता हूं...

कसैला स्वाद? कोकाकोला मीठा होता है न! फिर लहू की तरह कसैला स्वाद?

खननन!

यह कैसी हरकत मैं ने की है? बोतल फर्श पर चूरचूर बिखरी है, ठंडा कोकाकोला कालीन पर फैल गया है. मैं मैनेजर को दौड़ कर पास आते देखता हूं, बाय अदब से झुक कर कुछ फुसफुसा रहा है. दोनों विदेशी महिलाएं चौक कर मुझे नफरत से देख रही हैं.

"सौरी !"—मैं बुदबुदा कर उठ पड़ा हूं. पांच का नोट पता नहीं कहां, किस की ओर फेंक मैं बाहर निकल आया हूं. गर्म हवा के झोंके ने मुझे याद दिला दिया है, मैं एयर कन्डीशन्ड रेस्तरां से बिलकुल अचानक बाहर निकला हूं.

स्मृतिमंच पर परदा गिर गया है.

मैं अभी भी तकिए को भींचे हुए हूं. मेरी आंखों ने उसे

भिगो दिया है जिस से ऐसा लग रहा है मानों उस में जीवन आ गया हो. मैं अपने गाल से उस का गीला गिलाफ छुआता हूं. वह भीगाभीगा, गर्म और धड़कन से भरा है. मुझे राहत मिलती है. मेरे आंसू थम गए हैं. कमरे में फैला अन्धकार मुझे अखरता है पर मोमबत्ती जलाने का जी नहीं हो रहा है. खाट से उतरते ही कोई सांप बिच्छू मुझे डस न ले ऐसा बेतुका भय मेरे विवेक को निगल गया है. मैं अपने सिर को झटका देता हूं. मेरी आंखों को यह क्या हो गया है? झटके के साथ मानो वे कांच की गोलियों की तरह इधरउधर लुढ़कने लगी हों, सिर के भीतर की बारीक व बेहद संवेदनशील नसें उन के चारों ओर लिपटने लगी हों और बिलख रही हों. मैं फिर से सिर को झटका देने का साहस नहीं कर पा रहा हूं. दूसरे झटके के साथ कहीं वे अपने छिद्रों से बाहर निकल कर फर्श पर दौड़ने न लग जाएं. तब मैं उन्हें कैसे खोजूंगा क्योंकि उन के बिना मैं उन्हें देख नहीं पाऊंगा.

कैसी विचित्रविचित्र बातें मैं सोचता हूं. दिन को भलाचंगा रहता हूं लेकिन रात को कितना बेवकूफ हो जाता हूं. रायपुर से दिल्ली आए साल बीत रहा है. शुरू के दस माह ठीक से गुजर चुके हैं लेकिन इन दो माहों से मुझे यह हो गया है. रात होते ही मैं, दिन वाला मैं मर जाता हूं. मेरे अन्दर कोई दूसरा मैं घुस आता है और मुझे वही डरावनी खडखड़ सुनाई पडने लगती है और वह सीटी... मैं आ रहा हूं...मैं आ रहा हूं...

दिन को मैं रात वाले मैं पर हंसता हूं. कितना बेअकल है वह. फिर सोचता हूं, आज रात उस मैं को मैं अपने भीतर नहीं आने दूंगा.

लेकिन रात होती है और...

खट! खट! कोई धीमेधीमे लेकिन आत्मविश्वास के साथ

मेरे किवाड खटखटाता है और मैं जान जाता हूं, वह मैं आ गया है. मुझ पर जादू हो जाता है. मैं चाहता हूं, किवाड़ न खोलूं. न खोलने के लिए ही मैं ने उन्हें रात होने से पहले भेड़ दिया है. लेकिन मैं अपने पैरों को खाट से उतर कर दरवाजे की ओर बढ़ते देखता हूं. मेरे हाथ ऊपर उठते हैं. अपने आप सिटकिनी खुलती है. दरवाजे का पलड़ा उघड़ता है और हवा का झोंका भीतर आता है. झोंके के साथ वह मैं मेरे जिस्म के हर छिद्र से भीतर घुस जाता है और भीतर वाले मैं को बाहर निकाल देता है. मैं लाचार हूं...रोज ऐसा होता है... रोज मैं उस रोडरालर की खड़खड़ सुनता हूं. और वह सीटी... पि...पिइ...पीई...पीईईई!

तकिए पर मेरी भीचन कम हो गई है. मैं आज चीखा नहीं हूं. आदत हो जाने के कारण आखें अन्धेरे में अब काफी हद तक देख पा रही हैं. मैं ने अभी तक सिर को दूसरा झटका नहीं दिया है. कान में सूं हो रही है. मैं थोड़ा मुसकराया हूं, यों ही.

पांच साल पहले...

रायपुर की एक सड़क.

अभीअभी हुई बारिश में हम चारों भीग चुके हैं. मैं अपने कपार पर बालों का गीलापन महसूस कर रहा हूं क्योंकि वे आगे झूल आए हैं. मैं खामोश हूं.

निखिल बिलकुल अंग्रेजों की तरह गाता है...

ओ' जैक, जैक दि स्लैशर,

इज़ दिस मांस्टर्म नेम,

एंड एक्स्पोज़िंग गर्ल्स हाइन्डसाइड्स

इज़ हिस विशस गेम!

निखिल चुप हो गया है. गगन ने अपनी कहानी शुरू की है. मैं उसे हुंकारी भी नहीं दे रहा हूं. उसे मेरी हुंकारियों की परवाह भी नहीं है. वह मुझ से पांच साल बड़ा है. उस की करारी मूंछों ने मेरे भीतर कुछ हारने की सी भावना पैदा कर दी है.

चारों में मैं सब से छोटा हूं. उन की बातें मुझे अश्लील लग रही हैं. मैं चुप रह कर यह दर्शा रहा हूं कि मुझे उन की बकवास में रुचि नहीं है, जबकि है. यह पहला मौका है जब मैं गगन, निखिल और बीशू की टोली में शामिल हुआ हूं. इस से पहले उन्होंने मुझे 'अभी छोटे हो' कह कर अपने से अलग रखा था. अब मेरी मूछें फूट आई हैं और मैं बड़ा हो गया हूं.

गगन को मैं मन ही मन पसन्द करता हूं, बाहर से नापसन्द. अकसर वह मुझ से अश्लील प्रश्न पूछता है जो मुझे भले लगते हैं लेकिन जिन्हें मैं बुरे, बहुत ही बुरे कहता हूं. वह हंसता है, मानो मेरे मन का चोर जानता हो. गगन भी पांच साल पहले मेरे जितना रहा होगा तब उस के भी मन में मेरी तरह चोर रहा होगा. तभी तो उस की हंसी में इतना आत्मविश्वास है.

हम चारों उस सड़क पर से गुजर रहे हैं जिस पर बारिश के बाद की मखमली, सोंधी धूप दोनों ओर लहलहाते पेड़ों की छायाएं बना रही है. मैं चुप हूं. गगन ने अब अपनी चौथी प्रेम कहानी शुरू की है. निखिल और बीशू बीचबीच में हंसते हैं. थोड़ी शर्म सी उन के

हास्य में है. मैं हंसता नहीं हूं, हालांकि मेरे मन में गुदगुदी हो रही है.

"ओह, शी वाज वाइल्ड!"—गगन आह भरता है—"क्यों वच्चू, तुम ने कभी प्यार व्यार किया है?"

मैं चौकता हूं. प्रश्न मुझ से पूछा गया है. मैं शरमा गया हूं क्यों कि मैं टोली में सब से छोटा और नयानया हूं. मैं मुसकराने की चेष्टा करता हूं, आंखें उठा कर बीशू की ओर देखता हूं. लेकिन प्रश्न बीशू ने नहीं, गगन ने किया है. मैं गगन की ओर देखने लगता हूं. मेरे कान गर्म हो उठे हैं.

"देखो देखो, कैसा शरमा रहा है. बिलकुल लौंडिया की तरह."—बीशू रिमार्क देता है. सब खुल कर हंसते हैं. मैं जबर्दस्ती उन के साथ हंसता हूं ताकि मेरी और हंसी न उड़े.

गगन चुटकी ले रहा है—"तभी तो इस ने एक भी प्रेम कहानी नहीं लिखी है."

सब फिर से हंसते हैं.

ठीक कहता है गगन. सचमुच मैं नहीं जानता, प्यार कैसा होता है, कैसे होता है. सुन्दर लड़कियां मेरी क्लासफैलो हैं. उन की ओर देखना मुझे अच्छा लगता है लेकिन इसे प्यार नहीं कहा जा सकता. इन्द्रधनुष मुझे अच्छा लगता है लेकिन मैं उसे लव नही करता हूं.

लव!

गगन अपने चौथे लव की कहानी सुना चुका है. क्या लव में नम्बर होते हैं? जहां तक मेरी कल्पना जाती है, नहीं होते, लेकिन कल्पना गलत भी हो सकती है. मुझे ठेस पहुंचती है. मैं लव में नम्बर नहीं चाहता लेकिन ये तीनों—गगन, निखिल और बीशू, ये कहते हैं,

अपने अनुभवों के आधार पर कहते हैं, नम्बर होते हैं—चार, पांच, छह ...कई. कभीकभी एक के बाद एक न हो कर एक साथ कई.

गगन ठीक कह रहा है...तभी तो इस ने एक भी प्रेम कहानी नहीं लिखी...उस के शब्द मेरे भीतर घुट रहे हैं. मुझे बुरा लग रहा है. क्या यह मेरी कमजोरी है? मैं गहरे सोच मे डूब गया हूं. मेरे कदम मशीन की तरह उठ रहे है. मैं नहीं चल रहा हूं, कोई और चल रहा है. एक घाटी है...अन्धेरी घाटी...भीतर से कोई पुकार रहा है. मैं यहां हूं...मैं यहां हूं...आओ, मुझे छुओ, परखो...

यानी मैं किसी से प्यार करूं? लेकिन किस से? कैसे? कब?

मेरा सिर झन्ना गया है. मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूं. अब बीशू ने अपने लव का किस्सा शुरू किया है और गगन हुंकारी दे रहा है. लव को ये लोग उस तरह नहीं लेते जिस तरह मैं प्यार को लेता हूं. इन दोनों शब्दों में ये अन्तर मानते हैं...ये प्यार को बेवकूफी समझते हैं, लव को कला.

मैं निखिल की बगल से चल रहा हूं. निखिल भी अपने को लेडीकिलर समझता है. है भी शायद, बातें तो वैसी ही करता है. इन तीनों के वाक्यों में मैं चाह कर भी, पता नहीं क्यों, गप की बू नहीं पा रहा हूं. जो वे कह रहे हैं, उन सब को उन्होंने प्रयोगों से जांचा-परखा है.

मुझे याद आ रहा है, एक बार मैं ने केवल प्रयोग के लिए एक अंगार अपनी हथेली पर उठा लिया था. मैं देखना चाहता था, कैसा लगता है. मैं एक कहानी लिखने की सोच रहा था. नायक हथेली पर अंगार उठा लेता है. लेकिन मैं नहीं जानता था, अंगार चमड़ी कैसे झुलसाता होगा. और मैं ने प्रयोग किया. खुद की हथेली

जला ली. अंगार किस तरह चमड़ी से चिपक गया, किस तरह मैं ने अपनी चीख को रोका और किस तरह चमडी की उपली पर्त, निचली पर्त और मांस...फिर हड्डियो तक झुलसन रेंगती गई—सब का मै ने अनुभव किया. फिर कहानी लिखी. अंगार वाला दृश्य ऐसा बढ़िया लिख गया कि सन्तोष से दो दिन खाना भी नहीं खाया.

विधवा मां चारचार आंसू रोई.

प्रयोग!

मै अंगार का प्रयोग कर सकता हूं तो क्या...?

मेरी धड़कन बढ़ जाती है. एक सुरसुरी सी फैल जाती है रगों में. क्या प्यार...प्यार यानी लव इतना अद्‌भुत है कि उस की कल्पना मात्र में इतनी सनसनी...

लव करने में माहिर ये तीनों पता नही कैसा मजा लूटते होंगे. मैं बिलकुल सिकुड़ गया हूं. मुझे कुछ नही मालूम. दुनियां के साधारण रहस्य भी मेरे लिए अनोखे, अनबूझे हैं. मैं बेवकूफ हूं. लगता है, मैं अपने को ही तड़तड़ तमाचे मारूं. पर यह कमजोर क्षण यों गुजर गया है, मानों टेस्ट करने के लिए जलाया गया कोई बल्ब स्विच दबाते ही भक् से फ्यूज हो जाए.

"अबे सुन! कुछ सीखने मिलेगा!"—थप्प से मेरे कंधे पर निखिल हाथ मारता है. मैं बुरी तरह चौक जाता हूं. रंगे हाथों पकड़े जाने की दहशत सी मन में फट पड़ती है.

निखिल अपना लव नम्बर थ्री सुना रहा है—"मैं क्लास में कुछ दिनों तक उसे घूरता रहा. जब उसे पता चला कि मैं उसे घूरता हूं तो वह भी मेरी ओर देख कर थोड़ा मुसकराने लगी. वह मुसकराहट इतनी धीमी थी कि केवल मेरी ही आंखें उसे पकड़ सकती

थीं. फिर एक दिन मैं उस के कालेज से निकलने की राह देखता हुआ सड़क पर खड़ा हो गया और जब वह निकली तो शराफत के साथ नोट्स मांगे. उस ने खुशीखुशी दे दिए. मुझे पढ़ने क्या खाक थे, यों ही दोचार दिन रख छोड़े. फिर उन्हें वापस कर दूसरे नोट्स ले आया. धीरेधीरे घनिष्ठता बढ़ी. रेस्तरां में एकदूसरे को हम पार्टियां देने लगे. फिर एक दिन...

वह खिस्स से हंस पड़ता है. मुझे उस से नफरत हो आई है. आगे के प्रसंग उस ने रस ले ले कर सुनाने शुरू किए हैं और मैं सोच रहा हूं, यह सब क्या है? क्या है यह सब? क्या यही...

मन में विद्रोह फुत्कार करने लगा है. मैं कहानी लेखक बनता हूं! क्या मैं दायरे में बंधा हुआ नहीं हूं? दायरा, जिस में लड़कियों, औरतों, शराब, सिगरेट, भांग किसी का भी स्थान नहीं! मेरा साहित्य जीवन का प्रतिनिधित्व कैसे करेगा? मन खट्टा हो उठा है. दृष्टि पता नहीं क्या खोज रही है...मैं कायर हूं...अंगार का प्रयोग कर सकता हूं लेकिन...लेकिन...

अचानक मेरे कदम रुक गए हैं. अपनी नई कहानी का एक पात्र मेरे सामने घूम रहा है. उस ने नए फैशन की चुस्त फुलपैंट पहन रखी है और वह सिगरेट पी रहा है.

सिगरेट...

मेरा पात्र सिगरेट पी रहा है और मैं खुद नहीं जानता, सिगरेट कैसी लगती है. क्या मैं पाठकों को धोखा नहीं देता हूं?

विचारों की तूफानी नदी घुमड़ रही है और मैं देखता हूं कि बातों में आगे निकल गए गगन, निखिल और बीशू मुझे लिवाने के लिए वापस लौट रहे हैं. उन के चेहरों पर आश्चर्य है और मैं समझ नहीं

पा रहा हूं कि उन के प्रश्नों का मुझे क्या जवाब देना चाहिए.

"तसमे ढीले करने के लिए रुक गया था."—मैं झूठ बोल रहा हूं. मैं खुश हूं कि ऐन मौके पर मुझे यह सूझ गया है.

मैं ने सिगरेट पीना शुरू कर दिया है, घर में अम्मा के सामने ही पीने का साहस मुझ में है. मैं जानता हूं, अम्मा मुझे नालायक कहती है लेकिन मैं कोई भी काम छुपा कर नहीं करता, कर नहीं सकता. यह मेरा स्वभाव है. इसे कैसे बदलूं?

आज मैं फिर से हीराबाई के यहां जाने वाला हूं. जाने से पहले मैं अम्मा को बता देना चाहता हूं कि मैं कहां जाने वाला हूं. इस तरह मैं अम्मा के प्रति कितना क्रूर हो रहा हूं यह मैं समझ रहा हूं. लेकिन मैं लाचार हूं. जब मैं अम्मा से मुहफट, बेहया बेटे की तरह बात करूंगा तो उस का चेहरा पीड़ा से विकृत हो जाएगा. तब मेरी आंखें उस के चेहरे की एकएक रग को, एकएक रेखा को पकड़ेंगीं. मेरी स्मृति में उस का चेहरा छप जाएगा. यह छाप मुझे कभी भी काम आ सकती है. हो सकता है, कभी मैं किसी बदचलन लड़के की कहानी लिखूं. वह लड़का किसी वेश्या के यहां जाए और अपनी अम्मा को बता कर जाए. तब उस अम्मा के चेहरे का वर्णन मैं कितनी अच्छी तरह कर लूंगा.

इस विचार ने मुझे खुश कर दिया है और मैं ने पनामा का गहरा कश लिया है. अब मैं जानता हूं, सिगरेट एक धोखा है. नशा नहीं आता. मशीन की तरह लोग माचिस निकालते हैं, होंठों से सिगरेट अटकाते हैं, सुलगाते हैं, कश खींचते हैं और स्वयं उन्हें पता नहीं होता, वे क्या कर रहे हैं.

हां, शुरूशुरू में थोड़ा नशा जरूर आता है. धुंआं खींचने पर जीभ की अगली पोर पर ऐसा लगता है, मानों कोई धागा सा, जो

गर्म और तीखा है, सिगरेट में से खिंच कर जीभ पर कीड़े की तरह रेंग रहा है. धुआं भीतर निगलने पर गले में एक नन्हा सा झटका लगता है. दूसरे ही क्षण दिमाग की नसें झूम जाती है. मानों खोपड़ी जरा फूल कर पहले से थोड़े कम घनत्व वाली हो गई हो. लेकिन कुछ दिन में जीभ की पोर और दिमाग की नसों को उस धुंएं की आदत पड़ जाती है. सिगरेट के बारे में यह सब मैं सिगरेटें पी कर ही तो लिख सकता हूं.

मैं ने एक छल्ला हवा में उगला है. अब वह धीरेधीरे बिखर रहा है और मैं उस पदार्थ को याद कर रहा हूं जिस का मैं तीसरा प्रेमी हूं और जो मेरी चौथी...

मेरे चेहरे पर मुसकान थिरक रही है. मैं दूसरी सिगरेट सुलगाता हूं. हम लवर्स हैं. हमारे बीच समझौता हुआ है. जब भी हमारे जिस्मों को भूख लगती है...

मैं दोनों सीमाओं को देख चुका हूं. मुझे खुशी है कि समाज के दोनों वर्ग मेरे लिए परिचित हैं और दोनों की कहानियां मैं लिख सकता हूं. मैं सब कुछ खुद भोग रहा हूं...मैं हूबहू लिखना चाहता हूं कि हम क्या हैं, क्यों हैं, कैसे हैं...

अम्मा कीर्तन में गई है. घर में मैं अकेला हूं. वह कुछ देर में लौटेगी और मैं सोच रहा हूं, शुरुआत मैं किन शब्दों से करूंगा. अकसर शुरुआत सोची नहीं जाती है. वह हो जाती है. इस बार भी मैं ने उसे हो जाने पर छोड़ दिया है.

मैं टूटी खाट पर लेट गया हूं. मैं जेब में हाथ डालता हूं. उन नोटों से मेरी उंगलियों का स्पर्श होता है जो आज मैं हीराबाई को दूंगा.

हीराबाई ..

धुंआं स्मृतियां जगाता है...तीन साल गगन, निखिल, बीशू.. हीराबाई से पहली विचित्र मुलाकात...

रायपुर की बाबूलाल टाकीज के दाहिनी ओर की सकरी गली की ओर मैं निगाह फेंकता हूं. गगन पान बनवा चुका है. बिना मीठे का पान उस ने मेरी ओर बढा दिया है.

हम सिगरेटें सुलगा चुके हैं. गगन मुझ पर व्यंग्य कर रहा है. वैसे यह व्यंग्य अब बहुत घिसापिटा हो चुका है और सिवा गगन के सब ने उस का पीछा छोड़ दिया है. "इस नन्हीं सी जान की शान तो देखो!"—वह हंसता है लेकिन केवल वह हंसता है. हम चुप रहते है. फिर वह भी चुप हो जाता है.

बीशू यहां चौथी बार आया है. उस ने गगन से अभीअभी नई सिगरेट मागी है. मै उसे हथेलियों की कुप्पी मे सुलग चुकी तीली पर सिगरेट लगाते देख रहा हूं. सिगरेट का धुंआं तीली पर छोड़ कर उस ने तीली बुझा दी है. अब उस ने मेरी ओर देख कर मजाक किया है—"तो आज तुम पहली बार किसी औरत के साथ..."

"चुप भी रहो!"—मै झुंझला पडा हूं—"एक ही बात दस बार...हां! हां! हां! आज मै पहली बार किसी औ..."—बीच में ही मैं चुप हो जाता हूं. लगता है, बेकार झल्ला पड़ा हूं. रात का सन्नाटा है. आवाज भी बड़ी दूर तक गई होगी. मैं सोचने लगा हूं, रात को तो फुसफुसा कर ही बात करनी चाहिए.

हम खामोशी के साथ चलने लगे हैं और सड़क पर हो रही जूतों की खटखट सुन रहे हैं. गली का मुंह पास आ गया है. मैं झिझकता हूं. गगन, निखिल और बीशू अन्दर घुस गए हैं. जल्दी-जल्दी मैं उन के करीब पहुंचता हूं.

वातावरण धुंधला है. गली के दोनों ओर लड़कियां और औरतें खड़ी हैं. "ओ राजा! अए हए! इधर आ प्यारे!"—वे बेशर्मी से ग्राहकों को पुकार भी रही हैं. मैं अचानक घबड़ा कर बीशू का हाथ पकड़ लेता हूं. वह मुसकराता है.

एक लड़की पागल की तरह हमारी ओर दौड़ती है और मुंह से भुर्र करती हुई किनारे से निकल जाती है. मैं देखता हूं, वह अधनंगी है. मुझे दहशत हो आती है.

औरतों में से लगभग आधी बूढ़ियां हैं. उन के हाथ में पीली आंखों वाली छोटीबड़ी लालटेनें हैं. वे जवान औरतों और लड़कियों के चेहरे उस रोशनी में दिखा रही हैं. बारबार उन की लालटेनें ऊपर उठ कर बिकाऊ चेहरों के पास हवा में स्थिर हो जाती हैं.

मैं अब डर नहीं रहा हूं. गली के भीतर की और गलियों में हम घूम रहे हैं. मैं चारों ओर चौकन्नी दृष्टि फेर रहा हूं. वातावरण की हर बारीकी को मैं पकड़ रहा हूं.

हम चार हैं. दो लड़कियां हम ने पसन्द की हैं. निखिल बुढ़िया से मोलभाव कर रहा है. बीशू उस के पास खड़ा है. गगन सब को उपेक्षा से देखता हुआ एक दीवार से टिक गया है. वह अपनी मूंछों पर हाथ फेर रहा है. मैं पसन्द की गई लड़कियों के चेहरे पढ़ रहा हूं. वे बुतों की तरह चुप स्थिर खड़ी हैं. उन का सांवलापन और कान में पड़ी लाख की बालियों का लाल रंग अन्धेरे में बेहोश हो गया है.

बुढिया ज्यादा मांग रही है. निखिल एक रुपया कम देना चाहता है. मुझे निखिल पर गुस्सा आ रहा है. यहां एक रुपया नहीं देगा, यो रेस्तरां में पांचदस फूंक देने में नहीं हिचकेगा. मैं आगे जा कर उसे डांटना चाहता हूं लेकिन मेरे कदम जड़ हो गए हैं.

पर भागने से काम कैसे चलेगा. फिर मेरे सभी पात्र यहां से केवल झांक कर भाग जाएंगे. तब मेरी कहानियां कितनी अधूरी रह जाएंगी. नहीं, मैं इन्हें भोगूंगा.

बुढ़िया आठ आने कम पर मान गई है. उस के पास दो छोटीछोटी कोठरिया हैं. कोठरियों के दरवाजे बहुत छोटे हैं. भीतर जाने से पहले कितना झुकना पड़ेगा इस का मैं अन्दाजा लगाता हूं.

"क्यो लेखक महाशय!"—निखिल पिछले चार माहों से मुझे लेखक कह कर पुकारने लगा है—"पहले तुम जाओगे?"

"ऐं! मैं...अ...कौन, मैं?"—मैं बुरी तरह हकला जाता हूं. मानो मैं यहां इस के लिए आया ही न होऊं.

"डर लगता है?"

मेरे गले से आवाज नहीं निकलती है. मैं नकली मुसकान मुसकराता हूं. केवल सिर हिला कर कहता हूं, नहीं. लेकिन मेरी नहीं में छुपी हा को निखिल पकड़ लेता है. वह मुझे अलग ले जाता है. फुसफुसाता है—"हैव्ह हार्ट! डरोगे तो मजा नहीं आएगा."

मैं रुआंसा हो जाता हूं—"कौन कहता है मैं डर रहा हूं?"

परन्तु वह मेरी पीठ थपथपाने लगता है. मुझे उस पर गुस्सा आता है. वह फिर से बुदबुदाने लगता है—"तुम पहले मत जाना. पहले मैं जाऊंगा और उसे सब समझा दूंगा. वह तुम्हारी मदद करेगी."

अनजाने में ही मैं ने सिर हिला दिया है. थूक का एक बड़ा सा गट्टा मेरे मुंह में भर गया है. मैं उसे निगलता हूं. निगलने में मुझे काफी कोशिश करनी पड़ती है जो मुझे पसन्द नहीं आती है.

एक लड़की उस कोठरी में घुसी है. भीतर धुंधली टिम-टिमाती रोशनी अपनी छातियां नोच रही है. उस के पीछे-पीछे निखिल घुसा है.

चररर! किच!

रात्रि की नीरवता में दरवाजे बन्द होने की आवाज मुझे बुरी तरह चौका देती है. पास की दूसरी कोठरी का भी दरवाजा रिरियाता हुआ बन्द होता है. उस के भीतर दूसरी लड़की के साथ गगन...

बीशू मेरे पास सरकता है. मैं अपना भय दूर करने के लिए कहता हूं—"बीशू!"

"क्या है?"—बीशू पूछता है.

मैं जवाब नहीं देता हूं. मैं ने कुछ पूछने के लिए उसे नहीं पुकारा है, पुकारने के लिए पुकारा है.

"क्या है?"—वह दूसरी बार पूछता है पर मेरा मौन उसे भी चुप कर देता है.

वह बुढ़िया दलाल एक पत्थर पर चुपचाप बैठी है. उस की आंखें बहुत छोटी हैं जो अन्धेरे में दो काले धब्बों सी लग रही हैं. वह इन्तजार कर रही है कि कब वे दोनों दरवाजे खुलें, दो राक्षस बाहर आएं, दो भीतर जाएं. वे भी बाहर आएं और उसे सौदे के अनुसार रुपए दे जाएं.

राक्षस!

नहीं, मैं राक्षस नही हूं. मैं यहां अपनी भड़ास शान्त करने नहीं आया हूं. मैं यहां केवल इसलिए आया हूं कि मेरा कोई पात्र...

दो कुत्ते एक कुतिया के पीछे अन्धकार में सरक रहे हैं. मैं उन की ओर देखता हूं और सहम जाता हूं. लगता है, यहां के जानवर भी...मैं होंठ काटता हूं.

मुंह में खारापन भर गया है. शायद होंठ कट गए हैं.

क्या मैं उस कोठरी में वह नहीं करूंगा जो इस समय निखिल और गगन कर रहे हैं? मैं करूंगा, मैं निश्चय करता हूं. पहली बार मैं...यह एक प्रयोग होगा. उस की एकएक बारीकी मैं पकड़ूंगा ताकि...

चररर!

दरवाजा खुला है. निखिल बाहर आया है. दूसरा दरवाजा भी खुल गया है. गगन बाहर आ कर फुसफुसा रहा है, जैसे कोई सांप धीमे से कान में कुछ बुदबुदा रहा हो.

कोठरियों के दोनों दरवाजे बूढ़े, पोपले मुंहों की तरह खुले हुए हैं. भीतर से वे दोनों लड़कियां बाहर झांक भी नही रही हैं. वे केवल इन्तजार कर रही हैं...

मैं फट रहा हूं...हर चप्पे से...

कोई मेरी पीठ थपथपा रहा है. मेरी टांगें कांप जाती हैं. मैं पीछे मुडता हूं. निखिल कह रहा है—"जाओ, मैं ने सब समझा दिया है. वह तुम्हारी मदद करेगी. डरना नहीं. देखो, बीशू अन्दर गया...अरे तुम तो कांप..."

मैं तुरन्त मशीन की तरह कोठरी में घुस जाता हूं.

कोठरी का दरवाजा बिलख कर बन्द हो जाता है. दरवाजा मैं ने बन्द नहीं किया है. उसे उस लड़की ने बन्द किया है. भीतर कैद हवा में लालटेन के मिट्टी तेल की बू फैली है. लालटेन का कांच काला हो गया है. ऊपर से धुंएं की मोटी धारा छत की ओर बह रही है. दीवारों में पड़ी दरारें यों लग रही हैं मानो यहां दुर्भाग्य ने अपना चाबुक फटकारा हो और हर फटकार दीवारों पर निशान पाड़ गई हो.

वह मेरे सामने आ जाती है. उस ने कन्धों पर लापरवाही से एक मैली धोती डाल रखी है. उस का उभरा पेट धोती को फुलाए हुए है. वह मुसकराती हुई पूछ रही है—"क्या वाकई तुम ने कभी..."

वह एकदम से तुम पर आ गई है. मैं आभार सा महसूस करता हूं. मैं उत्तर में जबर्दस्ती मुसकराता हूं. "तुम्हारा क्या नाम है?"—मैं पूछता हूं.

वह चुप रहती है.

"यह...यह लालटेन बुझा दो. मुझे...मुझे..."

"डर लग रहा है?"—वह मेरा मजाक उड़ाती है. फूंक कर उस ने लालटेन बुझा दिया है.

मैं सोच रहा हूं, क्या निखिल ने उजाले में...

उस ने मेरा हाथ पकड़ा है. मुझे जरा भी सनसनी महसूस नहीं हुई है. निखिल, गगन, बीशू सब झूठ कहते हैं. मैं उस के पास बैठ गया हूं.

"तुम्हारा नाम क्या है?"—मैं फिर से पूछता हूं.

"हीराबाई."—वह कहती है. उस का स्वर पुरुषों सा है.

अचानक मेरी आंखें भर आई हैं. मै थूक चबाता हूं—"मै तुम्हारे साथ वह नहीं करूंगा...मै...मै..."

"इतना डर गए? या फिर...?"

मै उबल पड़ता हूं.

"डरो मत, दरवाजा बन्द है. उस में कुंडी नहीं है लेकिन उसे कोई नहीं खोलेगा. उसे केवल तुम खोलोगे...आओ..."

मै डर कर उस की गोद मे गिर पड़ता हूं और रोने लगता हूं. अन्धकार हर सांस के साथ मेरे भीतर घुस रहा है. मै साहस कर के उस की छातियां छूता हूं. वहां केवल आटा है. निखिल, गगन, बीशू सब झूठे हैं.

मै एक बेवकूफ कल्पना करता हूं कि काश, इन छातियों में दूध होता. मुझे अम्मा की याद आ जाती है. मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि यहां अम्मा कैसे याद आ रही है. भावावेश में मै उस की छातियां जोर से दबाता हूं परन्तु वे सूखी हैं, उन में दूध नहीं है...

वह मुझे भींचती है. चूमती है. मुझे अच्छा लगता है.

"नहीं नहीं, मै डर नहीं रहा हूं. मेरा मन नहीं है."— मैं बिलखता हूं.

"तुम डर रहे हो."—उस का चुम्बन जो केवल गीला होने के सिवा कुछ नहीं है, मेरे माथे पर चिपकता है. मैं उस की गोद से उठ जाता हूं.

"लालटेन जलाओ."—मैं अपनी बुदबुदाहट सुनता हूं.

खच्च!

उस ने तीली सुलगाई है. मैं देखता हूं, वह नंगी है. मुझे

अच्छा नहीं लगता है. उस की कमर पर लंहगे का निशान बहुत गहरा और काला है. मानों वहां से उस के जिस्म में कोई दरार पड़ी हुई है. मैं दीवारों की दरारों पर दृष्टि टिका लेता हूं. मैं डूब रहा हूं.

उस ने लापरवाही से कन्धे पर धोती डाल ली है. मुझे राहत मिलती है.

लालटेन जल कर फिर से धुआं उगल रहा है.

वह मेरे पास आ कर खड़ी हो गई है. वह कह रही है—"इस कागज पर आगे का नम्बर लिख दो."

उस ने एक मुड़ातुड़ा पुराना कागज मेरे सामने कर दिया है. उस की आंखें कौंध रही हैं, हाथ कांप रहा है. एक पेंसिल भी उस ने मेरी ओर बढ़ा दी है. मैं समझ नहीं पाता हूं, वह क्या चाहती है. मैं उस की ओर देखता हूं.

वह कह रही है—"मैं दो महिनों से यहां हूं. हरेक से मैं इस कागज पर आगे का नम्बर लिखवा लेती हूं. मेरा आदमी मुझे छोड़ कर भाग गया है और मैं .."

मैं आंखें फाड़ कर कागज की ओर देखता हूं. कागज पर एक से ले कर बयालीस तक संख्याएं लिखी हुई हैं. अलगअलग आकार और मोड़ों में...वे आदमी, वे भेड़िए इस औरत ने संख्याओं के रूप में याद कर रखे हैं...

मेरी दृष्टि ४२ पर टिक गई है. निखिल का लिखा ४२. उस का हाथ कितना कांपा होगा यह इन ४ और २ ने स्पष्ट कर दिया है.

और मैं भी कांप रहा हूं...

"नहीं, मैं अपना नाम नहीं लिखूंगा. मै ने तुम्हारे साथ..."

"ठीक है, तुम ने नहीं किया लेकिन नम्बर जरूर लिखो. हां, उसे चारों ओर से घेर दो जिस से मैं तुम्हें...तुम्हारा नम्बर याद रख सकूं .."

मै बड़ी मुश्किल से ४२ के नीचे ४३ लिखता हूं...उसे घेर देता हूं.

"बस!"—वह यों कहती है मानों वह कोई गाय हो जिस ने अपने बछड़े को खूब दूध पिलाया हो.

अब मै वेश्याओं के पास बेधड़क जाने लगा हूं. कई बार शराब के नशे में धुत रातोंरातो वहीं पड़ा रहता हूं. वहां अजीबअजीब लोग हैं, हर व्यक्ति एक पात्र! लोग मुझे बदमाश, लोफर, आवारा समझते है. समझा करें. मै जानता हूं, मै नहीं हूं. मै केवल वैज्ञानिक हूं. मै मै नहीं हूं. मेरे भीतर कोई और है जो हर समय देखता रहता है कि इस समय इसे कैसा लग रहा है, क्यों लग रहा है.

शराब!

एक वाक्य में वर्णन करूं उस के नशे का? मानों कांच की किसी नाजुक प्याली में कांच की ही एक गोली ऊपर से टपकाई गई हो और वह उछल रही हो...टड्टड्टड्...ड्ड्ड्ड्! वर्णन तभी कर सकता हूं न जब खुद मै ने उसे भोगा है.

निखिल अपने से बड़ी एक लड़की से प्यार करने लगा है.

सब के सामने तो वह उसे दीदी कहता है और ..सच, दुनियां कितनी अजीब, कितनी दिलचस्प है.

कइयों से अजीबअजीब परिस्थितियों में मेरी मुलाकातें हुई हैं. सभी अपने में पूर्ण करैक्टर. कोई भावनाओं की पुतली, कोई केवल दहकता मांस. कभी लिखूंगा; किसी उपन्यास में.

सोचता हूं, यह संख्या एक से आगे न बढ़ी होती, यदि उस नम्बर एक ने मुझे धोखा न दिया होता जिस के बालों को मैं मुंह में भर कर प्यार से चबाता था और जो मुझे नाक पर धीमे से काट कर झेंपती हुई हंसती थी. उस के धोखे से मैं विद्रोह कर गया हूं. मैं नारी मात्र से बदला लेना चाहता हूं. एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद...

...यों मुझे नम्बर एक का एहसान भी मानना चाहिए. उस ने मुझे धोखा दिया...मैं जान तो सका कि धोखा किसे कहते हैं. मन को कैसा लगता है धोखा खा कर. अब मैं धोखे का वर्णन अच्छी तरह कर सकता हूं. मेरे पात्र अब अच्छी तरह धोखा खा सकते हैं. हां, सच!

तकिए पर मेरी भींचन कम हो गई है. आंखों के सामने धुध उड़ रही है.

वह अन्धड़, मौत का वह अन्धड़. रायपुर में फैले प्लेग की वह सफेद भयानकता. विधवा मां का शिकार होना...मेरा वहां से भाग कर दिल्ली आ जाना...स्वतन्त्र लेखक का जीवन शुरू करने का माद्दा का जुटाना...सब याद आ रहा है...धुंध! धुंध!

मैं लिख रहा हूं. खुद भोग रहा हूं और लिख रहा हूं.

ठक! ठक!

स्मृतियां!

तकिए पर मेरी भींचन फिर बढ़ गई है. एकाएक बहुत ज्यादा. मैं ने मुंह खोल लिया है ताकि कभी भी चीख सकूं. मेरी एक-एक रग तनने ऐंठने लगी है.

मुझे वह दिन याद आ रहा है...आज से दो माह पहले...

मेरे हाथ में अखबार कांप रहा था. मैं ने एक सनसनीखेज समाचार पढ़ा था—एक भाई ने बहन की इज्जत.. भाई ने, उफ! बहन को कैसा लगा होगा? भाई को कैसा लगा होगा? बहन के चेहरे पर कैसे भाव तैरे होंगे?

और...और...एक कौंध हुई थी मेरे मन में. प्रयोग! काश! मरने से पहले अम्मा ने मेरे लिए कोई बहन...

एकाएक आसपास की चीजें दौड़ कर मेरे पास आ गईं. कमरे की छत नीचे गिर पड़ी, फर्श ऊंचे उड़ गया, चारों दीवारों ने चारों ओर से मेरी ओर छलांग लगाई...

जब मेरी आंखें खुलीं तो लोगों ने बताया, मैं १३ घंटों तक बेहोश रहा था.

रात को मैं ने आत्महत्या करने की सोची. छी, मैं कितना ...तभी भीतर के उस दूसरे मैं ने, जो पूरा का पूरा केवल आंखें ही आंखें

था, मुझे ललकार कर कहा—'नहीं, तुझे मरना नहीं चाहिए. तुझे जिन्दा रहना है ताकि तू अपने प्रयोगों को शब्दों की कैद दे सके...'

रात भर मैं न सोया. दूसरे दिन चढ़ती सुबह मेरी पलकें मुदीं और थोड़ी देर बाद...

खड़खड़! खडखड!

धुआं...

पि...पिइ...पीइ...पीईईईई...

मैं चीखा, चीईखा, चीईSSखा...

तब से रोज रात होती है और नीद की वह खून चूसने वाली डायन मेरे सामने नंगी हो कर नाचती है.

जिन्दगी की सहमी हुई सड़क रहस्य के अन्धकार में अद्धर लटक रही है. उस के इस छोर पर मैं खड़ा कांप रहा हूं और उस छोर से धुआं उठ रहा है...रोडरालर का धुआं...

मैं आ रहा हूं...मैं आ रहा हूं...खड़खड़! खड़खड!

पि...पिइ ..पीइ...पीईईईई...

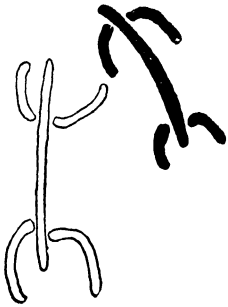

रानी और मानी

वे जुड़वां बहनें थी. एक सूरत, एक आवाज. एक चाल, एक लचक. एक दिमाग, एक मिठास. पहचानना मुश्किल : कौन कौन. मां भी धोखा खा जाती, औरों की क्या बात. सो रानी के गाल पर मां ने दो बिन्दियां गुदवा ली और मानी के हाथ पर मोर बनवा लिया. अब पता चल जाता है : रानी कौन, मानी कौन. लेकिन दूर से तो अभी भी रानी मानी, मानी रानी लगती है.

बोलती क्या हैं, कोयल लजा जाती है. चलती हैं तो पायल की छन्न! छन्न! हंसें तो रोते को भी हंसा दें. प्यारी सी दो बच्चियां. दो झूमती कलियां.

दिन दूनी, रात चौगुनी बढती जाती हैं. एक पात, दो पात, कई पात.

स्कूल जाने लगीं. जुगल जोडी. रोज एक सी पोशाक पहनतीं. एक से बाल कोरतीं. एक से फीते डालतीं. बिन्दी एक सी. कमर पर बेल्ट एक सा. मोजे एक से. जूते एक से. खट खिट खट खिट चली जाती हैं मेम सी. स्कूल की बाईजी इन दोनों पर फिदा. वारीवारी जाती है. इन के लिए नए बैंच, नई कुर्सी. इन के लिए रोज चाक की छड़ें. इन के लिए अच्छीअच्छी, प्यारीप्यारी, तितली सी रंगीन पुस्तकें. सब कुछ इन के लिए—पूरा स्कूल इन के लिए.

डाक्टर की लड़की चिढ़ती है. पटवारी की लड़की चिढ़ती है. सेठजी की लड़की चिढ़ती है. इन कंगालों पर इतनी दया? हमारे पास पैसा है—हमारे लिए नए बैंच, नई कुर्सी होनी चाहिए. अच्छीअच्छी, प्यारीप्यारी, तितली सी रंगीन पुस्तकें और रोज चाक की छड़ें हमारे लिए होनी चाहिए.

सो डाक्टर और पटवारी और सेठजी की लडकियां मुंह फुलाए रहती हैं. रानी से नहीं बोलतीं, मानी से नही बोलतीं.

लेकिन दूसरी लड़कियां तो घेरे रहती है रानी को, मानी को. रानी किलकिल, मानी खिलखिल. और उन के कारण दूसरी लडकियां भी किलकिल खिलखिल.

प्रायमरी पास हो गई रानी-मानी. कलियां खिल गई हैं. सुगन्ध बौरा गई है. मधुप पागल हो गए हैं. लोगों की आंखें नहीं ठहरतीं. रानी और मानी—लड़कियां या बिजलियां? छन्न से आती हैं, छनाक से चली जाती हैं. अभी इधर हैं, अभी उधर हैं. अभी थीं, अभी गायब.

बातें होती हैं—"राजकन्याएं हैं. कहां गरीब घर में पैदा हुईं?"

"कीचड़ में ही कमल खिलता है."

"इन को वर अच्छा मिलेगा? बेचारी गरीब हैं."

"गरीब होने से क्या होता है. हीरा जौहरी के पास ही जाता है."

"अभी तो जवान नहीं हुईं. होंगी, शहर पागल हो जाएगा."

"उन के मातापिता बड़े घमण्डी हो गए हैं."

"क्यों न होंगे! अप्सराएं जो हैं उन की बेटिया."

मिडिल में भरती की गईं. लड़कों के साथ पढ़ने जाती हैं. मातापिता का जी धकधक करता रहता है. जाने कब क्या हो जाए...

पर कुछ नहीं होता है. मिडिल पास कर लेती है दोनों. हाई स्कूल में आती हैं दोनों. कलिया पूरी तरह खिल गई हैं. निकलती है, हजारों दिल शिकार हो जाते हैं, इन को परवाह नहीं. किलकिल खिलखिल बातें करती चली जाती हैं. एक साड़ी, एक चप्पल, एक बिन्दी, एक किलक. फब्तियां कसी जाती हैं, ये कान नहीं देतीं. मक्खन में गर्म चाकू की तरह ये आरपार निकल जाती हैं.

होशियार भी गजब की हैं. लडकों के कान काटती हैं. मैट्रिक में मेरिट लिस्ट में आएंगीं दोनों. शिक्षकों ने भविष्यवाणी कर रखी है.

गरीब मातापिता गदगदाए जाते हैं देखदेख कर. हमारी बेटी. हमारी बेटी.

मैट्रिक की परीक्षाएं हुईं. रिजल्ट निकला. रानी फर्स्ट क्लास फर्स्ट, मानी फर्स्ट क्लास सैकिंड.

रानी-मानी. कालेजों से आमंत्रण आ रहे हैं. स्कालरशिप मिल रही है. फर्स्ट क्लास फर्स्ट, फर्स्ट क्लास सैकिंड. सेठों ने इन को पुरस्कार दिए हैं : ६०१), ५०१). हजार से ज्यादा रुपया आ गया. स्मरण-शक्ति-संवर्धक दवा की एक कम्पनी के विज्ञापन में रानी की तसवीर, मानी की तसवीर. यहां से भी १५०),१५०).

पड़ोसी भीतर से जले जा रहे हैं, बाहर से आनन्द से कूद रहे हैं. रानी-मानी. हमारे मुहल्ले की शान. देश भर में नाम हो गया. अब कालेज जाएंगीं. डाक्टर बनेंगीं—जाने क्याक्या बनेंगीं.

लेकिन रानी रो रही है.

मानी रो रही है.

रानी कालेज नहीं जाएगी.

मानी कालेज नहीं जाएगी.

आसपास लड़कियों का कालेज नही है. लड़को के कालेज में जाना होगा. लडके गुण्डे होते हैं. हाथ पकड़ लेते हैं. किसी के बाप का डर नहीं. जाने कब क्या कर बैठे. ये पराग की पुतलियां. नही. रानी कालेज नही जाएगी. मानी कालेज नहीं जाएगी. रानी रो रही है. मानी रो रही है.

रानी-मानी की मां कहती है—"क्यों जी, अब इन की शादी कर देनी चाहिए?"

"हां, अब इन की शादी कर देनी चाहिए."

"आगे पढ़ाने से कोई फायदा नही."

"आखिर चूल्हा ही सम्हालेंगी."

"लड़के वाले कई आ रहे है."

"हां, अच्छेअच्छे घरानों के आ रहे हैं."

"कोई दो चुन लेने चाहिए."

"दहेज?"

"नही देंगे. लेना हो तो लो. नहीं, जाओ. जिगर के टुकड़े तो दे रहे हैं."

"और इतनी होशियार!"

रानी के लिए एक इन्जीनियर पसन्द किया गया. ऊंचा-पूरा, मूंछों वाला. चार सौ तनखा. सरकारी नौकरी.

मानी के लिए एक मिलमालिक का बेटा पसन्द किया गया. हट्टाकट्टा, लम्बा, थोड़ा सा बढा हुआ पेट. आमद मासिक हजार से कम नहीं.

दोनों बहनें. एक साथ शादियां हो गई.

एक साथ दोनों ससुराल भी चली गई. रानी नागपुर चली गई. मानी एक कसबे में. रानी और मानी : दो शरीर, एक जीव, अलगअलग हो गई. शादी के पहले तो जंगली मुर्गियों की तरह झगडती थीं, अब आवाज सुनने को तरस जाती है. बस, चिट्ठियों का आसरा है.

रानी की चिट्ठी आती है—"मानी! मैं बहुत दुबली हो गई हूं. रोज तेरी याद आती है. अब जाने कब मिलेंगीं. तेरे जीजाजी बडे बुरे हैं. कहते हैं, तुम्हें कहीं न जाने दूगा."

मानी उत्तर देती है—"रानी, मेरा भी यही हाल है. तेरे जीजाजी दिनरात घर में पडे रहते हैं. कहते हैं, एक पल को भी न जाने दूंगा. क्यों री रानी, अब हमारी मुलाकात कब होगी?"

एक साल.

रानी मां बन गई. मुन्ना.

मानी मां बन गई. मुन्नी.

रानी का मुन्ना मानो ने नही देखा. मानी की मुन्नी रानी ने नही देखी. तसवीरें दोनो ने भेजी. मुन्ना मुन्नी जैसा, मुन्नी मुन्ना जैसी. लेकिन तसवीर से सन्तोष थोड़े होता है.

रानी लिखती है—"मानी! जल्दी मायके आओ. मैं भी आऊंगी. हम एक साल से नही मिली."

मानी लिखती है—"क्या बताऊं, मिलने की कितनी हौस है,

लेकिन तुम्हारे जीजाजी इजाजत नहीं देते."

रानी लिखती है—"मेरा भी वही हाल है, मेरी मानी!"

फिर एक दिन रानी के पति का तबादला नागपुर से बम्बई हो गया. मानी-रानी खूब रोई. अब तो दूरी और बढ गई. जाने कब मिलना होगा.

दूसरा साल. रानी की मुन्नी. मानी का मुन्ना. मायके से दोनों को पत्र आते हैं—"एक बार तो घर आओ. दो साल हो गए. तुम दोनों के मुन्नामुन्नी देखेंगे हम."

मानी गई मायके. पति ने सख्त नाराजगी से केवल एक हफ्ते की छुट्टी दी. मानी के मुन्नामुन्नी को नानानानी ने खूब चूमा. सात दिन तो यों बीत गए, आठवें दिन पति महोदय खुद लेने आ पहुंचे. रोती कपलती मानी विदा हुई. पति को जरा भी दया न आई.

और रानी तो आई ही नहीं. वह तो अब बम्बई में है. उतनी दूर से आना क्या मामूली बात है? और उस का भी पति बेरहम है. आने की इजाजत ही नहीं देता.

तीसरे साल रानी के पति का तबादला बम्बई से कलकत्ता हो गया. सरकारी नौकरी. ऐसा ही होता है.

मानी को रानी की चिट्ठी आई—"मानी, मैं सोमवार को शाम के मेल से कलकता जाऊंगी.

"मानी, तेरे कसबे में मेल दो मिनट रुकता है. मानी मेरी! तीन साल बाद केवल दो मिनट के लिए हम मिलेंगी. तू स्टेशन पर आना. मुन्नामुन्नी के साथ. हम रुक नहीं सकते. सरकारी आर्डर है. मंगल को कलकता पहुंचना ही होगा. मानी मेरी! मानी मेरी! मानी मेरी!"

मानी का दिल फट रहा है आनन्द के मारे. तीन साल बाद अपनी जुड़वा बहन को देखेगी. मेल दो मिनट रुकता है. दो मिनट में मानी रानी बहुत सी बातें करेंगी. हां, बहुत सी बातें. केवल दो मिनट! उसे देखते ही वह बाते करना शुरू कर देगी. जरा भी समय न खोएगी. मानी ने सोच लिया, वह शुरुआत कैसे करेगी. पहले वह नमस्कार करेगी. फिर जल्दीजल्दी उस के मुन्नामुन्नी को चूम लेगी. रानी मानी के पति को, मानी रानी के पति को झटपट एक उड़ती निगाह से देख लेगी. बस! फिर वे बातों में जुट जाएंगी. यह सब आधे मिनट में हो जाएगा. रहा डेढ़ मिनट. बहुत जल्दीजल्दी मानी बातें करेगी. रानी भी जल्दीजल्दी बातें करेगी. गाड़ी सीटी दे कर जब खिसकने लगेगी तो मानी भी गाड़ी के साथ चलती जाएगी और बात करती जाएगी. जब गाड़ी तेज हो जाएगी तो मानी चिल्ला कर नमस्कार कर लेगी. हां, ऐसा ही करना होगा. वरना दो मिनटों में ज्यादा बातें न की जा सकेंगी. फिर जाने कब मिले!

मानी मुन्नामुन्नी व पति के साथ स्टेशन पहुंची. मानी का दिल धकधक. अभी गाडी कहां होगी? कितनी दूर होगी? रानी को भी धकधकधक हो रहा होगा. वह क्या कर रही होगी इस समय?

गाड़ी दूर से आती दिखी. मानी को कैसाकैसा लगने लगा. काश, स्टेशन सूना होता! तब मानी चिल्ला कर गाती और नाचती भी.

धकड़धक, धकड़धक!

गाड़ी आ कर खड़ी हो गई. भीड़, हल्लागुल्ला, धक्कामुक्की, दौड़धूप.

मानी ने धड़कते हृदय से चारों ओर दृष्टि दौड़ाई. एक डिब्बे से एक स्त्री उत्सुकता से बाहर देख रही थी. वह कौन है? रानी?

हां, उस के गाल पर दो बिन्दियां गुदी हुई हैं. लेकिन वह तो बहुत दुबली है. बाल बिरले हो गए हैं. आंखें अन्दर उतर गई हैं. गाल पिचक गए हैं.

शंका से मानी आगे बढ़ी और पूछा—"क्या आप रानी हैं?"

रानी ही थी. उस ने मानी के हाथ के मोर को देखा और कहा—"तो तुम मानी हो? ओह, मेरी मानी!"

मानी नमस्कार करना भूल गई. रानी के पति को देखना भूल गई. रानी के मुन्नामुन्नी को चूमना भूल गई. दड़ दड़ रोने लगी वह. रोती गई, रोती गई.

और रानी भी रो पड़ी. रोती गई, रोती गई.

मानी ने रुदन रोकने की कोशिश की, पर असफल रही. उस के होंठ बिचक जाते थे और आंखें छलछला आती थीं. मानी को रानी का चेहरा धुंधला दीख पड़ रहा था. उस ने लाचार हो कर सोचा—"रोते-रोते ही बातें कर लेनी चाहिए."

उस ने हाथ बढ़ा कर रानी के चेहरे को छुआ. उस का रोना बढ़ गया. बड़ी मुश्किल से बोल पाई—"तुम इतनी दुबली..."

रानी ने भी अपने प्यासे हाथ बाहर निकाल लिए और मानी के चेहरे की पोरपोर को छूने लगी. रोती जाती थी, रोती जाती थी. बड़ी मुश्किल से बोल पाई—"तुम इतनी दुबली..."

और दोनों फट पड़ीं.

दो मिनट बीत रहे थे...

दोनों को जैसे होश आया. दोनों ने दोनों को अपने मुन्ना-

मुन्नी दिखाए. रानी का पति भीड़ से चेहरा निकाल कर बाहर झांक रहा था. अपनी मूंछें उस ने निकाल दी थीं अतः बड़ी मुश्किल से वह पहचान आता था. मानी का पति उस के पास आ कर अजनबी की तरह सूखे हास्य के साथ बातें करने लगा. दोनों ने दोनों के पतिदेवों को देखा.

रानी ने सोचा, कुछ बात करूं. मानी ने सोचा, कुछ बात करूं. परन्तु फिर से दोनों रुदन से फट पड़ीं. बच्चों की तरह वे बिलख उठी. आधी हुई जा रही थीं दोनों.

"कुछ बोलो!"

"क्या बोलूं?"

और रोती गईं वे. रोती गईं, रोती गईं...

सीटी हुई. झंडी हिली. गाड़ी खिसकी. मानी कांपने लगी. गाड़ी के साथ चलती हुई बोली—"रानी! रानी! कुछ बात करो."

रानी आंसुओं में डूब गई थी.

गाड़ी तेज हो गई. रानी आगे चली गई...धकड़धक, धकड़धक! और देखतेदेखते वह ओझल हो गई.

मानी धाड़ मार कर वहीं प्लेटफार्म पर बैठ गई. पति उस की बेवकूफी के लिए उसे डांटने लगा. वह रोती गई, रोती गई.

सुख की छत और जिंदगी की बारिश

जिन्दगी की बारिश ने सुख की जर्जर छत से चू चू कर अनिरुद्ध को इतना भिगोया, इतना भिगोया कि उसे गरीबी की सर्दी हो गई. लेकिन उस भीगी अवस्था में भी अनिरुद्ध ने बेवकूफी यह की कि तेज चलती हवा में बाहर निकल पड़ा—उस ने माधुरी से शादी कर ली. केवल इतना ही हुआ होता तो भी एक बात थी लेकिन भीगे कपड़ों और तेज हवा से उसे न्यूमोनिया हो गया—उस की पत्नी ने लगातार छह बच्चे पैदा किए.

गृहस्थी के घोड़े की लगाम टूटने लगी...

अकसर अनिरुद्ध याद किया करता, कमल ने कितना मना किया था...कमल! उस का प्यारा दोस्त! लेकिन अनिरुद्ध न माना था. अनिरुद्ध के मन में उन दिनों अजीब सी भड़ास भरी थी. वह शादी करना चाहता था—गरीबी में भी. उस का तर्क था—'मेरे माता-पिता तो हैं नहीं. मैं अपने लिए कमाऊंगा, वह अपने लिए. कठिनाई क्या है?'

सो माधुरी उस की सहधर्मिणी बन गई.

एक साल तक तो कठिनाई न हुई. अनिरुद्ध ने अपने लिए कमाया, माधुरी ने अपने लिए. लेकिन दूसरे ही साल माधुरी की गोद भर गई और अनिरुद्ध ने कहा—"अब तुम नौकरी नहीं करोगी."

माधुरी भी यही चाहती थी. एक वर्ष तक होटल का खाना खा कर उस का स्वास्थ्य गिर गया था. अनिरुद्ध का भी यही हाल था. सो उस ने नौकरी छोड़ कर घर में भोजन पकाना शुरू कर दिया और पडोसन ने उसे कुछ लोरियां भी सिखा दीं.

लेकिन एक के बाद एक छह...

अनिरुद्ध को बेवकूफियां करने की आदत पड़ गई थी. नहीं, सन्तति नियमन का पाप वह न करेगा. इतना पढ़ालिखा होते हुए भी, बारिश में इतना भीगागीला होते हुए भी उस के मन का यह विश्वास न मरा था कि बच्चों की संख्या ईश्वर तय करता है, मनुष्य का उस पर कोई बस नहीं. मजे की बात यह कि थोड़े विरोध के बाद माधुरी ने भी इसे स्वीकार कर लिया था.

अनिरुद्ध अकसर माधुरी को कमल के बारे में बताया करता —"कमल मेरा सब से अच्छा दोस्त था. मैं उस की सलाहों का बड़ा मान किया करता था. बस, उस की एक सलाह मैं ने नहीं मानी और तुम से शादी कर बैठा."

शर्म से माधुरी के गाल ललिया जाते और उत्सुकता से वह पूछती —"आजकल वह है कहां?"

अनिरुद्ध एक गहरा सांस अपने फेफड़ों में भरता और कहता —"पता नहीं कहां है. खा रहा होगा कहीं दरदर की ठोकरें. बहुत गरीब था. उस में यदि सब से बड़ी कोई बुराई थी तो यही कि वह खत लिखने में बड़ा आलसी था. देखो न, मुझे भी केवल आठ खत लिखे हैं कमबख्त ने—पूरे दस साल में."—फिर वह यों मुंह बनाता मानो कोई बहुत महत्वपूर्ण वचन दे रहा हो—"मैं तुम्हें जरूर उस से मिलाऊंगा. वह मजेदार है."

कमल की कोई तसवीर भी अनिरुद्ध के पास नहीं थी कि उसे माधुरी को दिखा कर वह उस का कुछ आभास दे सकता. और ज्यों-ज्यों बच्चे दो से तीन से चार होते गए, उन दोनों में कमल की चर्चा कम होने लगी. उस संख्या के छह तक पहुंचतेपहुंचते तो कमल उन के बीच से लगभग विदा ही हो गया—मानो वह उन के दिलों की चादरों पर कोई प्यारी सी कसीदाकारी की डिजाइन हो जो हर साल की धुलाई में धीरेधीरे उधड़ती चली गई हो.

जब अचानक अनिरुद्ध को कमल का संक्षिप्त सा कार्ड मिला तो उसे बेहद खुशी हुई.

छठवां बच्चा, जिस का नाम अभी नही रखा गया था, पालने में जागता हुआ पड़ा था. अनिरुद्ध ने उस के लिए कुछ ही दिनों पहले चांदी का एक झुनझुना खरीदा था. वह अपनी नन्हींनन्ही मुट्ठियों में उसे गुच कर खुश हो रहा था. अनिरुद्ध ने उस के गाल पर एक पतली चिकोटी काटी, होंठों को गोल कर छोटी सी सीटी बजाई और कहा—"अबे हरामी! तेरा चाचा आ रहा है! खबरदार!"

अनिरुद्ध का मौजी स्वभाव जिन्दगी की ऊबड़खाबड़ राह को सपाट बना देता था. कई बार माधुरी सोचा करती कि यदि अनिरुद्ध कोई लटका हुआ, उदास, उखड़ा व्यक्ति होता तो उस के साथ जीवन कितना दुःखदायी हो उठता.

अनिरुद्ध की बात सुन कर माधुरी मुसकरा पड़ी.

"कमलजी से कहना, इस का नाम वही रखें."—वह बोली.

"अजी देखना, कहने की जरूरत ही न पड़ेगी."

माधुरी पालने पर झुक गई और देखती रही मुन्ने के हाथ के

उस सफेद झुनझुने को, जिसे अनिरुद्ध ने अपने खर्चों में जाने कहां, कैसे कटौती कर के खरीदा था.

अनिरुद्ध ने एक बार फिर जेब से कमल का कार्ड निकाला और पढ़ा—'अनि! पता नही, यह कार्ड तुम्हें मिलेगा भी या नहीं. दस साल पहले तुम जिस दफ्तर में थे, आज भी यदि वही हो, तब तो तुम्हें यह मिलेगा, अन्यथा...हां, तो मैं परसों आ रहा हूं. तैयार रहना. मिलने पर ही खूब बातें करेंगे. —क०'

क०!

वही पुरानी आदत—क०! कभी कमल नही लिखेगा.

मुसकरा कर अनिरुद्ध ने कार्ड मोड़ा और जेब में रख लिया. दस वर्षों में कमल कितना बदल गया होगा. ओह! पहचान भी पाऊंगा या नहीं. वह भी शायद ही मुझे पहचान पाए.

कमल आज आने वाला था. अनिरुद्ध उत्साह से उछलता हुआ दफ्तर पहुंचा. कमल पहले दफ्तर आएगा, क्योंकि वह केवल दफ्तर का पता जानता है. वहां रिसीव कर के अनिरुद्ध उसे घर ले आएगा. माधुरी कितनी खुश होगी.

'कमल जरूर मेरी चुटकी लेगा.'—वह सोचता रहा और उस के चेहरे पर धीमी मुसकान थिरकती रही—'कहेगा, बड़े पराक्रमी हो यार! पूरे छह!'

दफ्तर में कुर्सी पर बैठते समय भी उस के मन पर कमल ही छाया था—'शैतान ने अपने बारे में कुछ भी नही लिखा. शादी...बच्चे ...नौकरी...कुछ नहीं. ट्रेन बारह बजे आती है. यदि वह स्टेशन से सीधा यहां आए तो एक तक आ ही जाएगा.' उस ने दफ्तर की

घड़ी की ओर दृष्टि दौड़ाई. एक बजने में अभी पैंतालीस मिनट थे.

पैंतालीस मिनट! ...

दोनों ने एकदूसरे के गिर्द अपनी बांहें पूरी ताकत से भेड़ दीं. एकदूसरे को लगभग थामे हुए वे रेस्तरां की ओर बढ़े. उन के दिलों की धड़कन बढ़ गई थी और बातचीत की शुरुआत किन शब्दों से हुई थी यह वे बिलकुल भूल गए थे.

रेस्तरां!

कितने दिनों बाद अनिरुद्ध वहां गया था! खुशी के इस मौके पर भी उसे अपनी गरीबी का एहसास हुए बिना न रह सका. यह देख कर अनिरुद्ध को बड़ा दिलासा मिला था कि कमल के कपड़े बहुत साधारण थे. यदि कमल कीमती सूटबूट में होता तो जरूर अनिरुद्ध उस से उतना खुल कर न मिल पाता जितना खुल कर कि वह मिला.

बिल का भुगतान कौन करे इस पर दोनों में बड़ी हुज्जत हुई. अन्त में मेहमान होने के नाते कमल को अनिरुद्ध की बात माननी पड़ी. बिल अनिरुद्ध ने ही भुगताया...और उसे लगा, वह बहुत बड़ा बेवकूफ है ..लेकिन दूसरे ही क्षण अनिरुद्ध के मन से यह भाव उड़ गया.

पालने की ओर इशारा कर कमल ने पूछा—"नम्बर?"

"छह!"—अनिरुद्ध ने कहा. दोनों हंस पड़े. माधुरी लाल

हो कर वहां से भागी.

"छह! छ...छतरसिंह! इस का नाम छतरसिंह होना चाहिए." —कमल ने नकली गम्भीरता से कहा. रसोई के दरवाजे की आड़ से उन की बातें सुन रही माधुरी ने मुंह में साड़ी ठूंस ली ताकि हंसी की आवाज बाहर न जा पाए...

कमल ने आगे बढ़ कर चांदी के उस झुनझुने को बच्चे के हाथ से छीन लिया और पूछा—"क्यों रे गुड्डे! जानता है यह कितने का है?"

अनिरुद्ध स्तंभित रह गया. कीमत! एकदम उसे याद आया, वह कितना गरीब है. उस ने कमल की ओर देखा. कमल बच्चे को पुचकारने में लगा था. अनिरुद्ध दूसरी ओर घूम गया. माधुरी ने भी रसोई में यह सुन लिया होगा. उस का मन एकदम खट्टा हो गया.

रात के दो बज गए लेकिन दोनों मित्रों की बातें समाप्त न हुईं. अनिरुद्ध को यह जान कर अन्दरूनी प्रसन्नता हुई कि कमल अभी भी मुफलिसी जिंदगी से छुटकारा नहीं पा सका है. इस प्रसन्नता को अनिरुद्ध ने पसन्द तो न किया लेकिन प्रसन्नता उसे हुई इस से वह इन्कार न कर सकता था.

कमल अभी तक अविवाहित था. वह एक नौकरी का इन्टरव्यू देने के लिए यहां आया था. यहां उसे दो ही दिन रुकना था. अनिरुद्ध ने शिकायत की—"तुम ने दस साल में मुझे केवल आठ खत लिखे. भई, हर बात की हद होती है."

"तुम तो मेरी आदत जानते हो प्यारे!"—उस ने कहा—"और मैं झूठे वादे करना पसन्द नहीं करता. खैर...आगे कोशिश करूंगा, ऐसा न हो..."

"तुम मेरी शादी में भी न आए थे. भाभी को तुम ने उस समय देखा होता तो..."

"ओफ! इतने बौखलाते क्यों हो? चलो, माने लेता हूं, उस समय बड़ी बड़ी बड़ी बड़ी खूबसूरत थीं, बस? और अभी भी क्या कम हैं!"

"मेरा मतलब यह न था."—अनिरुद्ध ने कहना चाहा लेकिन कमल के कहकहों में उस की आवाज डूब गई.

कमल ने प्रेस किया हुआ कमीज अपनी अटैची में रखा और मुसकरा कर बोला—"अच्छा, तो भाभी...फिर मिलेंगे .."

"मिलेंगे तो जरूर, लेकिन खत वत लिखना, समझे?"—माधुरी ने कहा.

"और छतरसिंह के लिए कोई अच्छा सा नाम भी सुझाऊंगा!"—वह हंस पड़ा.

बाहर से तांगे वाले की आवाज आई—"बाबूजी, देर हो रही है..."

अनिरुद्ध ने भर्राए गले से कहा—"कुछ दिन तो और रुक जाते कमल!"

"नहीं भाई, कहीं उधर की नौकरी भी गई और इधर भी न मिली तो कहीं का न रहूंगा. सिक लीव्ह ले कर आया हूं. उन्हें यदि इस की भनक भी पड़ जाए कि मैं ने इन्टरव्यू दिया है तो..."—उस ने

उंगली को गर्दन पर छुरी की तरह फेर कर और जीभ को तालू से रगड़ कर टिच की आवाज की.

सब हंस पड़े.

कमल इलाहाबाद की एक प्राइमरी शाला में अदना मास्टर था, इसी की ओर उस का इशारा था.

तांगे वाले ने फिर से पुकारा.

कमल तागे मे बैठा. तागा चला. दोनो ओर से रुमाल हिले. कमल की आंखों में आंसू छलक आए. अनिरुद्ध का गला तो भर आया था ही.

तांगा जब आंखों से ओझल हो गया तो पतिपत्नी आंगन पार कर के भीतर आए. अनिरुद्ध बोला—"बेचारा! अस्सी रुपयों की नौकरी कर रहा है. इतने से आज के जमाने में होता क्या है?"

"भगवान करे उसे यहां की नौकरी मिल जाए. ढाई सौ मिलेंगे तो शादीवादी की बात सोचेगा."

"औरतों को शादी के सिवा और सूझता ही क्या है."

"यह तुम अपने से पूछो."

तभी पालने में सोया छतरसिंह थोडा कुसमुसाया. माधुरी पालने के पास गई. अनिरुद्ध एक कुर्सी पर बैठ गया. दस साल बाद अपने प्यारे दोस्त से वह केवल दो दिनों के लिए मिला था. कितनी निर्दयता से चला गया कमल! लेकिन इस में निर्दयता की क्या बात है. नौकरी में ऐसा ही होता है.

जाने कैसे अनिरुद्ध को सहसा यह विश्वास हो गया कि कमल को ढाई सौ वाली नौकरी मिल ही जाएगी और वह यहीं आ जाएगा.

तब जिंदगी कितनी दिलचस्प होगी.

अचानक अनिरुद्ध ने देखा, माधुरी का चेहरा फक हो गया है. "क्या हुआ माधुरी?"—उस ने पूछा.

माधुरी के चेहरे पर झिझक उभरी. उस ने अपना निचला होंठ काटा और दूसरी ओर घूम गई.

अनिरुद्ध शंका से उठ खड़ा हुआ और माधुरी के पास आ कर बोला—"क्या बात है माधुरी, तुम्हारा चेहरा..."

"कुछ नहीं!"—माधुरी ने थूक घोट कर गले के नीचे उतारा.

अनिरुद्ध ने उस के कन्धे पकड़े और आंखों में झांक कर कुछ पकड़ने की कोशिश की.

माधुरी ने आखिर कह डाला—"मुन्ने का झुनझुना..."

"क्या हुआ झुनझुने का?"

"नहीं है."

"क्या मतलब?"

माधुरी ने कन्धे पर से अनिरुद्ध के हाथ हटाए. अनिरुद्ध की कनपटी फड़कने लगी. उस के मस्तिष्क में जैसे एक कौंध हुई. लेकिन नहीं, यह कैसे हो सकता है. कमल...

परन्तु असम्भव भी तो नहीं है. झुनझुना पांच रुपयों से कम का क्या होगा...गरीबी इन्सान से क्या नहीं कराती...छोटी सी चीज, उठाई, जेब में रख ली, किसी को पता ही कैसे चल सकता है. जरा सी हरकत और पांच...

छी:! मेरे मन में ये कैसे भाव आ रहे हैं. अनिरुद्ध ने अपने सिर को झटका दिया. मैं कितना ओछा हो गया हूं. क्या कमल जैसा दोस्त...

"अच्छी तरह देख लो, कहीं दबा हुआ न हो,"—अनिरुद्ध ने कहा.

पतिपत्नी ने जल्दीजल्दी पूरे कमरे में झुनझुने की खोज की. झटपट सारी चीजें उलटपलट डालीं लेकिन झुनझुना न मिला.

दोनों में से किसी ने न कहा और दोनों समझ गए.

अनिरुद्ध ने माधुरी से आंखों ही आंखों में पूछा—'क्या करूं?'

माधुरी फर्श पर बैठ गई.

"जाऊं उस के पीछे?"—आखिर अनिरुद्ध ने पूछा.

माधुरी ने एक निश्वास छोड़ा.

अचानक अनिरुद्ध की आंखों में लाली उभर आई. उसे याद आया, कमल ने झुनझुने की कीमत आंकी थी...ओह! उस वाक्य के पीछे कितना बड़ा रहस्य छुपा हुआ था! उस ने अपना पुराना कोट कन्धों पर डाला और बोला—"आजकल के दोस्त! मैं जाता हूं उस के पीछे, जा कर कहूंगा, निकालो मियां, नहीं तो लेता हूं तलाशी!"

शक के लिए अब जगह न थी. माधुरी की जबान खुल गई—"मुझे तो उसी दिन शक हो गया था. मुझे अच्छी तरह याद है, झुनझुना आज मुन्ने की मुट्ठी में ही था. मैं ने अपनी आंखों से देखा था."

साइकल दरवाजे से बाहर निकालने में अनिरुद्ध की मदद करती हुई माधुरी बोली—"गाड़ी छूटने में भी देर नहीं है. दौड़ो स्टेशन.

दे चाहे न दे लेकिन थोड़ा सुना कर तो आओ."

अनिरुद्ध पर भूत सवार हो गया. झुनझुने की चोरी से कहीं ज्यादा वह दोस्त की गद्दारी पर क्रोधित था. धुआं होता हुआ वह कुछ ही मिनटों में स्टेशन पहुंच गया. प्लेटफार्म पर कमल को खोजने में उसे देर न लगी. पास जा कर उस ने छूटते ही कहा—"मैं ने तुम से ऐसी आशा नहीं की थी कमल!"

कमल आश्चर्य से उस की ओर ताकने लगा.

"नकली आश्चर्य मत दिखाओ, दोस्त! निकालो झुनझुना."

"झुनझुना?"—कमल का मुह खुला रह गया.

"हां, चांदी का झुनझुना! निकालो! निकालो!"

कमल हंस पड़ा—"झुनझुना तो गया."

"गया? किधर गया?"

"बिक गया. मैं ने पहले से ही बेचने का इन्तजाम कर रखा था. स्टेशन आते समय तांगा रुकवाया, झुनझुना दिया, रुपए लिए और चल पड़ा. आधे मिनट से भी कम..."

"कमल!"—अनिरुद्ध उस की बेशर्मी पर चीख उठा.

"मुझे रुपए चाहिए थे. वे मुझे मिल चुके हैं. तुम वापस चले जाओ. जब मेरे पास होंगे, लौटा दूंगा."

तड़ाक से एक तमाचा कमल के गाल पर पड़ा.

"बेशर्म! बेहया! लुच्चा!"—अनिरुद्ध को होश न था, वह क्या बक रहा है...एक झुनझुने के लिए...उसे लगा, वह कमल के

सामने खड़ा न रह सकेगा. वह वापस घूम गया और खटखट प्लेटफार्म से बाहर निकल गया.

साइकल स्टैण्ड से साइकल छुड़ाते समय उस के दिमाग में बवण्डर उठ रहा था. बेहयाई की भी हद होती है. बेच दिया! मानो बाप का माल हो. कम से कम झूठा तो इन्कार किया होता!

वह घर में घुसा. माधुरी उस का ही इन्तजार कर रही थी. उसे देखते ही वह कमल के लिए गालियां बकने लगा—"हरामी! नंगा! बेशर्म! मैं ने कहा झुनझुना निकालो तो बाप के माल की तरह कहने लगा, बेच दिया! हद होती है!"

माधुरी उस के पास आई और खामोश खड़ी हो गई. उस के चेहरे पर बादल देख कर वह बोला—"फिकर मत करो. जाने दो. पांच रुपए कौन सी बड़ी बात है."

माधुरी ने अपनी मुट्ठी खोल दी. उस की हथेली में झुनझुना था. वह फुसफुसाई—"मिल गया. कपड़ों में छुपा पड़ा था."

अनिरुद्ध को लगा, जिन्दगी की बारिश तेज हो गई है और सुख की जर्जर छत का थोड़ा और फूस आज बवण्डर में उड़ गया है.

बरखा

झमकू ने बरौनियों को सिकोड़, हथेलियों से आंखों पर छाया बनाते हुए नंगे आकाश की ओर देखा जहां तीनचार चीलें आकाश की गर्म नीलिमा में ऊंचे, बहुत ऊंचे, काले धब्बों की तरह मंडरा रही थीं. सूर्य क्षितिज की ओर लुढ़क रहा था. पूरे आकाश में कहीं भी रुई का एक छोटा फाहा भी न था. धरती की छाती गरमी से दरकी जा रही थी.

"देर हवे, दू हफता तो जरूर लगही."—झमकू ने पास बैठी कुसिल्या की ओर देख कर कहा. माथे पर उभर आए पसीने के दानों को उंगली से पोंछ कर नीचे टपकाते हुए उस ने एक गहरा सांस लिया.

"दू हफता?"

"जरूर से."—झमकू ने कहा—"देखत नहीं, अकास एकदम सफा हवै! एक छोटकुन बदरिया घलो के नईं."

लेकिन बरखा दो सप्ताहों से पहले ही आ धमकी. झमकू खुश था कि उस की भविष्यवाणी गलत निकली. झरझर! झरझर! एक दिन आकाश में छेद हो गया.

"इन्दर राजा की जै! इन्दर राजा की जै!"—झमकू ने अपने दोनो टुरों (लड़कों) को सिखाया. टुरे उछलउछल कर चिल्लाने

लगे. उन की बड़ी बहन दूज मुसकरा पड़ी. बोली—"मोर की तरै नाचत हैं ए मन तो!"

"मोर से कम थोड़े न हैं."—कुसिल्या ने गर्व से अपने दोनो टुरों की ओर देखते हुए कहा.

बड़े का नाम लछमन और छोटे का किशन था. दूज के पूरे पांच बरस बाद लछमन आया था, लछमन के केवल सवा बरस बाद किशन. बस, ये ही तीन परसाद भगवान ने झमकू को दिए.

झोपड़ी के दरवाजे पर नीची छत से गिर रही पानी की धारों की चिक पड़ गई थी जिस ने प्रकृति को धुंधला कर दिया था. धारें गिरने की और छत पर बौछार होने की छरछर झोपड़ी में लबालब भरी थी. दोपहर का समय था लेकिन चारों ओर अंधेरे की घुप्प घिर आई थी. कालेकाले हाथियों ने आकाश के नीले रंग को ढंक लिया था. उन हाथियों के सिर आपस में टकराते तो सप्प से बिजली की पतली, कौधभरी, कईकई शाखाओं वाली जीभ लपलपाती और छुम से गायब हो जाती. प्रकृति चादी की हो जाती —नन्हे से क्षण के नन्हे से भाग के लिए—और फिर होती जोरदार आवाज—घड़ड़ड़ड़!

"इन्दर का रथ दौड़ रहा है."—लछमन और किशन किलक उठते. दोनो के शरीर काले थे, माटी की तरह काले, और उन के दांत बगुलों जैसे सफेद थे—बगुले, जिन के झुड के झुड अब उन की झोपड़ी के सामने के पीपल के पेड़ पर आ बैठे थे और जो अब दिन भर ओच् ओच् करने वाले थे.

फिर दोनो टुरे कपड़े उतार कर नंगे हो गए और बरखा में बाहर निकल पड़े. जमीन में छोटेछोटे गढ़ों में गंदला पानी भर गया था. उन गढ़ों में ये दोनो छपछप करने लगे. उन के सिर के

बाल भीग कर आपस में चिमड़ गए थे और मोटीमोटी लटें से उन के कपार आधे से ज्यादा छुप गए थे. उन की आंखें और नाक और गाल और होठ धुल कर मानो नए हो गए थे. वे चिल्ला रहे थे और उन के गले की नसें फूल रही थीं. झमकू और कुसिल्या उन के स्वस्थ डील को देख रहे थे और उन की आंखों में कौध भरी थी.

पहला दिन! आज बरखा का पहला दिन था. धरती से उठती सोंधीसोंधी गन्ध ने उन्हें खुश कर दिया था. कुसिल्या ने कहा —"दुन्नो अब तो बड़े होगे हवै."

"दुन्नो ला स्कूल में भरती करा देऊं? फीस ऊस कछु नई लागे. गौर्नमीन्ट पढ़ाती है."—झमकू ने कहा.

कुसिल्या की आंखें चमकने लगी.

बरखा के रुकने तक दोनों टुरे नहाते रहे और उन के माता-पिता को जरा भी चिन्ता नहीं थी कि उन्हें जुकाम हो जाएगा. जब बरखा रुकी तो हर घर, हर छप्पर, हर दरवाजा, हर आंगन धुल गया था. पेड़ों के सूखे डंठल नहा कर चमकने लगे थे क्योंकि अब वे पत्तों से लदने वाले थे. धरती की छाती मुलायम हो गई. ढलानों पर धूल में धारियां बन गई जो आड़ीटेढ़ी थीं और जिन पर अब नई, बिलकुल नई, कोमल धूप पड़ रही थी. उस धूप के कारण चिड़ियों के गले से चहचहाहटें फूट निकली. रामचिरैया, धूलचिरैया, कौए, बगुले, चील, नीलकठा, मैना आदि पंछियों ने शोर से वातावरण गुंजा दिया.

झोपड़ी के बाहर एक छोटा सा छप्पर छा कर झमकू ने अपनी गाय बांध रखी थी जिस की बड़ीबड़ी आंखों से डर कर लोग उसे कजरी कहने लगे थे और जिस का जिस्म गर्मियों में सूख कर छीज गया था. उस की लम्बी पूंछ बालों के गुच्छे के साथ इधरउधर फटकारें कर रही थी जिस से उस की पीठ पर बैठने का प्रयास करते बगुले उड़ जाते थे.

उस की कजरी आंखों में कुछ ही दिनों में धरती पर चादर की तरह बिछ जाने वाली हरियाली घूम रही थी और वह रह रह कर रंभा रही थी—"बां s s s!"

बरखा रुकते ही झमकू पगडी लगा कर बाहर निकल पड़ा. पासपड़ोस की और झोपड़ियों मे से मर्द निकल आए और खुश स्वर में बातें करने लगे कि बरखा कितनी अच्छी होती है.

फिर उन्होने देखा कि आकाश में प्याराप्यारा इन्द्रधनुष खिच गया है जो रह रह कर मुसकरा रहा है. थोड़ी देर के बाद उस इन्द्रधनुष के ऊपर एक और रंगीन गोला उभर आया और इन लोगो के दिल भोलेपन से नाचने लगे.

रात का आकाश साफ था अतः सब ने अपनी टूटीफूटी खाटें, जिन के पाये जमीन पर आड़ेतिरछे पड़ते थे और जो मुश्किल से एक फुट ऊंची थीं, खुले आंगन में बिछा दीं और उन की आंखें आकाश में फिसलते चांद कर टिक गईं जिस के आसपास सफेद बादलों का अल्प पारदर्शक किला बना हुआ था. थोड़ी देर में वह किला टूट गया और वे बादल चादनी को पीते हुए घोड़ो की दुमो की तरह लम्बे हो गए मानो उन्हें अब नीद आने लगी हो. उन्हें ऊंघते देख कर लोगों के पपोटे भी उनीदे हो गए लेकिन उसी समय रात के बगुलों का एक झुड ओच् ओच् अक अक करता हुआ उन के ऊपर उड़ानें भरने लगा और वे चौक कर जाग गए. जब उन्होने देखा कि ये तो बगुले हैं तो उन के होंठों पर मुसकराहट आ कर बैठ गई और उन की आंखें खुशी से भीग गईं क्योंकि उन्हें याद आ गया कि बरखा आ गई है.

परन्तु रात के रथ ने आधी दूरी पार की न की कि साफ आकाश पर इन्दर राजा के कारेकारे दूत गुलाटें खाने लगे और फिर अचानक जोर से घड़घड़ाहट हुई और छरर बरखा होने लगी. सब

हड़बड़ा कर उठ पड़े और उन की हंसी की आवाजों ने रात की खामोशी को कहीं और भगा दिया. सब अंधेरे में गिरतेपड़ते अपनी खाटें छप्परों के नीचे करने लगे. अचानक बड़ीबड़ी बूंदें उन के जिस्मों से प्यार करने लगीं और वे कई बार फिसल कर जमीन पर गिरे और खुश हो कर हंसने लगे क्योंकि बरखा आ गई थी.

दूसरे दिन सुबह मुहल्ले के मर्द इकट्ठे हो कर फिल्मी धुनों पर बनाए गए गीत गाने लगे—"ठण्डी हवा काली घटा, जियरा मोरा डोले रे!" और—"मोरी राना पै इन्दर की मेहरबानी, जाय नाही अब भरने पानी!"

उन्होंने नएनए कपड़े पहन रखे थे. कोई ढोलक बजा रहा था, कोई घुघरू, एक हारमोनियम से उलझ रहा था. उन के सहगान में और संगीत में और नृत्य में लय नही थी, ताल नही थे, सुर नहीं थे—लेकिन था आनंद, जो उन के दिलों की सच्ची गहराइयों से उफनउफन कर बाहर आ रहा था.

मुर्गियां अपने चूजों के साथ उन घूरों पर चढ़ गई थीं जो बरखा में नंगे हो गए थे. मुर्गियों के साथ दो मुर्गे भी थे जिन के माथों पर लाल कलगी लगी हुई थी और जो बारबार गर्दन उठा कर गर्व स चारों ओर देखते और बांग देते थे—"कूकड़ूंकू" उन का स्वर ऐसा था मानों सब को चुनौती दे रहे हों—है कोई माई का लाल जो इस घूरे पर आ सके? सुअरों के एक झुण्ड ने उस की चुनौतियां सुनीं और वे ताव खा गए. हड़फहड़फ करते हुए वे घूरे पर चढ़ गए और मुर्गों को दल बल सहित भाग जाना पड़ा.

ढलती दोपहर किशन और लछमन मछलियां मारने निकले. उन के पास टिन का एक छोटा सा डिब्बा था जिस में उन्होंने जमीन पर रेंगते निरीह केंचुओं को पकड़ कर भर लिया था. दोनो के हाथ

में एकएक डगैन थी जिसे उन्होंने कन्धों पर रख कर उस से अपने दोनों हाथ चील के डैनों की तरह झुला दिए थे. उन की चाल में मस्ती थी और उन के नंगे पांवों पर गीली मिट्टी के थक्के जूतों की तरह चिपक गए थे.

लेकिन वे दोनो टुरे बेवकूफ थे. उन्हें इतना भी नहीं मालूम था कि पहली बारिश में ही गढ़ों और खेतों में मछलियां नहीं आ जातीं. शाम तक कोशिश करने पर भी वे कोई मछली न पकड़ पाए. निराशा को दूर भगाने के लिए उन्होंने अपनीअपनी जेबों से बीड़ियां निकालीं जो उन्होंने बाप की नजर बचा कर चुरा ली थीं. धुंआं पी चुकने के बाद उन्होंने डिब्बे के केंचुओं को गाली दी और उन्हें जमीन पर लावारिस छोड दिया. छोटीछोटी, लाललाल नसों जैसे मालूम पडते वे केंचुए रेंगरेंग कर इधरउधर छुपने लगे. उन में से कई केंचुए आधे थे क्योंकि उन के आधे जिस्मों को इन दोनो ने छोटेछोटे टुकड़ों में काट कर और डगैन में फंसा कर पानी में डाल दिया था. आधे होते हुए भी वे जिन्दा और पूरे केंचुओं की तरह ही रेंग रहे थे.

जब वे वापस लौटे तो उन्होंने देखा कि उन की झोपड़ी के सामने वाले पीपल के पेड के नीचे की जमीन पर सफेदी पुत गई है. यह सफेदी पीपल की घटा में दुबके बगुलों की बीट की थी जो अब अपने घोंसले बनाने की तैयारियां कर रहे थे. इन दोनो ने बिना किसी दुश्मनी के झाड़ की घटा में पत्थर फेंके. बगुले अपनी लम्बी-लम्बी टांगों व गर्दनों के साथ हवा में मंडराने लगे.

इस के बाद दो दिनों तक बरखा न हुई और तेज धूप हवा में चिलचिलाती रही. धरती पर जो थोड़ाबहुत कीचड बना था वह सूख गया. लेकिन पहली बरखा ने मेढ़कों और झींगुरों की नींद तोड़ दी और वे टर्रा कर और चिर्र चीं...की तानें छेड़ कर बरखा की

दूसरी किश्त को बुलाने लगे.

इन दो दिनों में झमकू ने दोनो टुरों को पराइमरी स्कूल में भरती करा दिया. उन को कुसिल्या ने खीर बना कर खिलाई और जी भर कर असीस दिए. वह यह सोच कर खुश हो रही थी कि ये दोनों अब बड़े आदमी बनेंगे और उसे चिट्ठियां लिखवाने के लिए साहजी का मुह ताकना नहीं पड़ेगा.

साहजी की याद आते ही उसे वह सौदा भी याद आ गया जो कल झमकू ने साहजी के साथ पटाया था. झमकू के पास जमीन नहीं थी, न बैल ही थे, लेकिन वह बरखा को प्यार करता था, दिलोजान से और क्योंकि वह बरखा को प्यार करता था, वह जमीन और हल और नाज के दानों—बरखा की हर चीज को प्यार करता था. बरखा और सर्दियों में वह साहजी के खेतों में रोजी पर काम करता था. वह साहजी के पास गया था जिस के पास सैंकड़ों बीघे जमीन थी और सौदा पटा आया था—रोज के दो रुपए और डट कर काम.

कुसिल्या ने इन दो दिनों की धूप में उन कंडों को सुखा लिया जो पहली बरखा में भीग गए थे. कजरी के गोबर के कारण झोपड़ी के आसपास मक्खियां भिनभिनाने लगी थीं लेकिन कुसिल्या को इस की परवाह नहीं थी.

दो दिनों के बाद एक सप्ताह तक कभीकभार हल्कीफुल्की फुहारें आ कर धरती को छेड़ कर जातीं और धरती शरमा कर हंसने लगती. गढ़ों में मछलियां आ गईं. मेढ़कों की आबादी जादू की तरह अचानक कई गुना हो गई. किशन और लछमन को झोपड़ी मे घुस आए मेढ़कों को भगाने में बड़ा मजा आता. खेतों की मेढ़ों पर जगह-जगह केंकड़ों के बिल बन गए थे. ये दोनों टुरे उन बिलों पर हथेली से कुप्पी बना और उस पर मुह रख कर जोर से चिल्लाते—"केंकड़े,

केंकड़े! कोलिहा (सियार) आवत है. भाग! भाग!"

उन की चीख से केंकड़े बाहर निकल आते और वे लोग उन के दोनों पंजों को धागों से बांध कर डिबिया में बन्द कर लेते और अपने साथ स्कूल ले जाते और मास्टर साहब की दराज में छोड़ देते.

कुछ दिनों में जब मैदानों में चरौटों की झाड़ियां उग आईं तो उन पर पारदर्शक पंखों वाले कौड़ीमुड़ी (पतंगे) के झुंड के झुंड मडराने लगे. ये झुंड हवा में थोड़ी देर अद्धर लटके रहते, फिर अचानक तीर की तरह आगे बढ़ जाते और फिर से कहीं अद्धर लटक जाते. किशन और लछमन ने उन की नाजुक दुमों में धागे बांध कर उन्हें पतंग की तरह उड़ाया और उन के पीछे दौड़ते हुए खूब चिल्लाए और क्योंकि दौड़ते समय उन की नजरें आकाश की ओर होती थीं, वे कई बार गन्दे नालों और गढों में गिरे. तितलियों के पंखों को मसल कर उन की रंगबिरंगी छाप अपनी उंगलियों पर उठाने की कोशिश में कई मासूम और निहायत खूबसूरत तितलियों की जान उन्होने ली. पिटपिटी (बरसाती सांप जिस में जहर नहीं होता) का पीछा करने का शौक भी उन्हें चर्राया. कुछ दिनों तक वे पिटपिटी सांपों को केवल दूर से डराते सताते रहे, फिर वे साहसी हो गए. वे दोनो अब पिटपिटी दिखाई पड़ते ही उस की दुम पकड कर उठा लेते और गोल कुडलियां बना कर पैंट की जेब में भर लेते और स्कूल ले जाते और उन के साथ वही करते जो वे केंकडों के साथ करते थे. सीता की लट!—वे पिट-पिटी को इस नाम से भी पुकारते, हालांकि उन्हें मालूम नहीं था, यह नाम उन्हें किस ने और कब और क्यों सिखाया था.

एक दिन किसी दोस्त ने उन्हें कौड़ीमुड़ी की एक खासियत बताई—कौड़ीमुड़ी को मार कर उस का सिर डिबिया में बन्द कर दिया जाए और उस डिबिया को सात दिनों तक जमीन में गाड़ कर रखा

जाए तो वह सिर खूबसूरत कौड़ी बन जाता है. सो इन दोनो ने एक बड़ा सा कौड़ीमुड़ी पकड़ा, उस का सिर इस तरह तोडा जिस तरह वे किसी बेर को किसी डाल से तोड़ते और उसे माचिस की डिबिया में बन्द कर के जमीन में गाड़ दिया. सात दिनों के बाद उन्होंने उस जगह पर खोद कर डिबिया निकाली लेकिन खोलने पर भीतर उन्हें केवल कौड़ीमुड़ी का सड़ा सिर और उस की बदबू ही मिल सकी.

"झमकू! अपन टुरों ला सम्भाल के रखबै. हाथ से छटक जाहीं तो फेर पछताए कछु न होही."—साहजी ने झमकू के हाथ में उस दिन की मजदूरी के दो रुपए थमाते हुए कहा. किसी अज्ञात शंका से झमकू कांप गया.

"दुन्नो ला स्कूल में तो डाल दे हवो. का बात होगै सरकार?" —उस ने पूछा.

"बात तो कछु नई हवै, लेकिन दुन्नो ला जबतब मैं मटरगस्ती करत देखथौं. मोला लागथै के दुन्नो स्कूल से भाग के सैरसपट्टा करन लगे हवै."

घर लौटते समय रास्ते में झमकू के मन में कई विचार कौंध रहे थे. दोनो टुरे बीड़ी पीने लगे हैं इस की शिकायत पासपड़ोसियों ने कई बार उस से की थी लेकिन उस ने कान न दिए थे. पिछले कुछ दिनों से उस की जेब से एकदो आने रोज के गायब होने लगे थे. क्या दोनो टुरे चोरी भी...उस का सिर घूम गया. उस ने निश्चय किया कि आज दोनो की अच्छी तरह मरम्मत करेगा.

लेकिन घर में घुसते ही कुसिल्या उस के सामने आ कर खडी हो गई और शंकाभरे स्वर में बोली—"दुन्नो टुरों के सरीर तपत हैं. भूत लग गै. इमली तले पेशाब कर दे हवै." सुनते ही झमकू का

निश्चय पिघल कर बह गया और वह बैगा (मन्त्रों का जानकार) को बुलाने दौड़ा. जोरावरसिंग छत्तीसगढ़ का सब से बड़ा बैगा था लेकिन उस की फीस बहुत ज्यादा थी. वह एक साधारण बैगे को बुला लाया लेकिन उस ने दोनो टुरों को देखते ही कह दिया कि ये दोनो भूत बड़े भूत हैं जिन्हें उतारना केवल जोरावरसिंग के बस की बात है. हार कर झमकू को जोरावरसिंग को बुलाना पड़ा.

जोरावरसिंग ने आ कर दोनो टुरों के आसपास उंगली से एक घेरा बनाया, फिर अंगारों पर धूप डाल कर खूब धुआं पैदा किया. फिर राख की एक चुटकी भर कर उसे दोनो की ओर फूंक से उड़ाता हुआ बोला—"मैं, छत्तीसगढ़ का सब से बड़ा बैगा जोरावरसिंग, ओडर देता हूं कि दुन्नो ला एकदम छोड़ के भाग जा नई तो कच्चा खा जाहूं! हाऊ S S S!"—उस ने एक नारियल फोड़ कर सब को परसाद बांटा, फीस का सवा रुपया लिया और लगातार तीन दिनों तक और आने का वादा कर के चला गया.

लेकिन दूसरे ही दिन झमकू को पता चल गया कि दोनो टुरों को भूत नही लगा बल्कि उन्हें हैजा हो गया है. जोरावरसिंग को रोज का सवा रुपया देने की बजाए उस ने सरकारी हासपीटल से दवा लाना ज्यादा ठीक समझा. वैसे कुसिल्या से इस बात को ले कर उस की बहुत झड़प हुई क्योंकि कुसिल्या को दागतरों पर जरा भी विश्वास न था और वह ताल ठोंकठोंक कर चिल्ला रही थी कि टुरों को भूत ही लगा है.

झमकू ने उस की चीखों पर कोई ध्यान न देते हुए सरकारी हासपीटल की ओर कदम बढ़ाए. वहां रोगियों की काफी बडी भीड़ जमा थी. भीड़ में जो फुसफुसाहट हो रही थी उस से झमकू को पहली

बार पता चला कि पूरे छत्तीसगढ़ में हैजा फैल गया है और लोग पटापट मर रहे है.

"हैजा का दवा दो."—उस ने बारी आने पर कम्पाउण्डर से कहा.

कम्पाउण्डर ने उस की ओर देख कर हिन्दी में पूछा—"किस को हुआ है हैजा? तुम तो खासे भले दीखते हो."

झमकू हिन्दी समझ तो जाता था क्योंकि छत्तीसगढ़ी से वह बेहद मिलती थी लेकिन हिन्दी बोलना उस के लिए टेढ़ी खीर थी. बोला—"मैं तो बने (ठीक) हूं माई बाप, मोर दुन्नो टुरा मन ला होय हवै."

"किस ने बताया कि उन के हैजा है?"—दवाई मिलाते हुए कम्पाउण्डर ने पूछा.

"फुबारा से सफेद दवा छांटन वाले (डी० डी० टी०) आए रहें, ओ मन बताइस."

कम्पाउण्डर ने दवा दे दी.

हासपीटल में लोग खुदबुदा रहे थे कि बरखा में हैजा फैलता है और झमकू को बड़ा खेद था कि बरखा, जो इतनी अच्छी है, हैजा फैलाती है. और जब वह अपनी झोपड़ी में घुसा तो भीतर रोनाधोना मचा था.

"क्या हुआ? क्या हुआ?"—उस ने कांपते हुए पूछा.

कुमिल्या गीली, सील गई जमीन पर चित पड़ी छाती कूट रही थी. वह झमकू की ओर पागलों की तरह आंखें फाड़ कर चिल्लाने लगी—"तूने अपन बेटे की हत्या कर दी. तू हत्यारा है रे .."

"हत्या?"

और उस की बौखलाई दृष्टि पूरी झोपड़ी में घूम गई. एक कोने में गोबर लीप कर वहां सिर से पांव तक कपड़ा लिपटी एक लाश पड़ी थी. पास ही घी का डरावना दीपक जल रहा था. कौन? कौन है यह? किशन? लछमन? उस ने तुरन्त दोनों टुरों की ओर देखा. किशन की खाट खाली थी.

तो किशन म ..

"किशन!"—वह चिल्लाया.

लछमन खाट में चित लेटा चुपचाप रो रहा था. उस के सिरहाने बैठी दूज आंसू ढार रही थी. पिता की चीख ने उन का धैर्य तोड़ दिया और वे आवाजें कर कर के सिसकियां लेने लगे.

"किशन को तै ने मारा!"—कुसिल्या बारबार दुहरा रही थी और छाती पीट रही थी—"तै दवा लेने गए, भूत बौरा गिस! एक बिटवा तो मर गिस, अब दुसर घलो (दूसरा भी) मर जाही."

"नहीं! नहीं! मोर लछमन नईं मरही! मैं अभी जोरावर-सिंग को बुला कर आवत हौं!"—झमकू के मन में पीढ़ियों से घुसा भूतों का भय अचानक नंगा हो गया और वह तूफान की तरह बाहर भागा.

जोरावरसिंग ने आ कर मंत्र पढ़े और धूप्रा किया और तालियां बजाबजा कर भूत को चुनौतिया दीं और जाते समय सब को आश्वासन देता गया कि अब कुछ न होगा.

लेकिन उस के विदा होने के बाद झमकू के दिल में फिर से शंका ने खबड़े दांत निपोरे—'कहीं जोरावरसिंग का टोना न चलिस तो? अऊ ए दुनियां पागल थोड़े न हवे जो दवा पीयत हवे.' उस के

हाथ उस जेब की ओर बढ़े, जिस में हैजे की दवा थी ..

फिर वह सारी शंकाओं को भूल गया और उस के सामने किशन की लाश घूमने लगी जिसे आग देने का प्रबन्ध उसे करना था और आग के लिए उस की जेंट में पूरे पैसे नहीं थे. वह दौड़ादौड़ा साहजी के पास गया, रुपए उधार लिए और वापस लौटा. रास्ते भर वह सोचता रहा—"साहजी कईसे मुह बिगारिस! मुस्सिबत में कोनू काम नईं लागे."

किशन को आग दे कर चूती आंखें और सीसे का दिल लिए वह वापस लौटा. आ कर उस ने लछमन का कपार छुआ तो वह धीख रहा था. फिर उस ने जेब से दवा निकाल कर उसे जबर्दस्ती पिला दी. कुसिल्या उस समय झोपड़ी से बाहर रोती औरतों से घिरी बैठी थी...

बरखा के कारण घास के मैदान लहलहाने लगे थे. गर्मियों की तरह लोग पैरा खरीद कर गायों को न डालते थे. अब तो बंसी बजाते हुए छैलछबीले ग्वाले आते और गायों को खोल कर उन्हें चराने ले जाते—कसबे के बाहर, घास के हरे मैदानों में. कजरी भी जाती थी सब गायों के साथ. एक दिन गई तो न लौटी. दूसरे दिन पता चला, रेल में कट गई. रेल की दो लाइनें घास के मैदान के बीच से गुजरती थीं.

कुसिल्या फूटफूट कर रोई. उतना ही रोई, जितना किशन की मौत के समय रोई थी. "कजरी! मोर (मेरी) कजरी! बरखा तोला (तुझे) खा गिस! तोला खा गिस, मोर बेटा ला घलो (को भी) खा गिस. बरखा काबर (क्यों) आइस. मरी बरखा, तोर खटिया निकले (तेरी अरथी निकले.)"

झमकू का मन मानो कोई भारीभरकम लबादा था जिसे पानी में भिगो कर चूने के लिए किसी खूटी से लटका दिया गया हो. वह सोच रहा था, क्या सचमुच यह बरखा का दोष है? बरखा हैजा लाई, हैजे ने बेटे को खा लिया. बरखा हरे मैदान लाई, जहा कजरी की बलि चढ़ी...क्या बरखा इतनी बुरी...

अचानक वह खड़ा हो कर जोर से चिल्लाया—"कुसिल्या! चुप रै. बरखा ला (को) बुरा बकथस? सरम मर गे हवै का? बरखा खाए भर देथे अऊ तै..."

"हां! हां! बरखा दुन्नो ला भरख गै."—कुसिल्या बिफर गई—"जाने कब जाही नकटी! हत्यारन!"

लेकिन बरखा जाने में अभी पूरा एक माह बाकी था.

और सात दिनों की मनहूस, अंधेरी, बुदबुदाहटों से भरी झड़ी के बाद जब दूज एक सुबह झोपड़ी के दरवाजे पर आई तो उस ने देखा, गन्दला पानी ऊंचे आंगन में भीतर तक घुस आया है. उस की सहमी दृष्टि चारों ओर घूम गई...पानी! पानी! चारों ओर मटमैला पानी पीलापन फैला रहा था...उस की सतह के ऊपर पौधों की हरी चोटियां थोड़ीथोड़ी निकली हुई थीं. पेड़ों के तने तेज झड़ी में खुरच गए थे और जहां से छाल के बड़ेबड़े थक्के उतरे थे, वहां पींड़ के भीतर से पीला गूदा दीख पड़ रहा था, मानो उन पेड़ों को पीब भरे फोड़े हो गए हों.

पूर!

दूज के गले से एक चीख निकल गई—"दाई, दाई, पूर!" और वह उल्टे पांव अन्दर भागी. रास्ते में एक गुलगुले चूहे पर उस

का पाव पडा और वह चीख पड़ी—"रोगहा मुसवा!" लेकिन क्योंकि चूहे से कहीं ज्यादा खतरनाक पूर था, वह चूहे को उसी समय भूल गई और फिर से चिल्लाने लगी—"दाई! ददा! ददा! उई!"

लछमन कमजोरी के कारण पीला हो गया था. उस का स्वर भी बड़ा दयनीय हो गया था. उस ने भयभीत होते हुए आंखें चौड़ी कर दी—"पूर?"

केजऊ और कुसिल्या तुरन्त बाहर निकले. लेकिन बाहर निकलने से केवल पूर की भयानकता का ख्याल हो सकता था...

पानी न उतरा. उस की डरावनी पीली सतह पर पौधों की जो चोटियां दीख रही थी, वे क्रमशः छोटी होती गईं और अन्त में डूब गईं. चिड़ियों ने आकाश में शोर मचा दिया. बगुलों के झुड उडते और बीट करते जाते. कौओं की मक्कार मूरतें भी भोली व दयनीय हो उठी थी. रामचिरैयाएं चहचहाना भूल कर इधरउधर छोटीछोटी उड़ानें भर रही थीं. नीलकंठ तीखी चीत्कारों के साथ तीर की तरह आकाश में ऊचे उठते थे, पत्थर की तरह गिरते थे और फिर से चीख कर ऊपर उठते थे. उन के हसीन डैनों मे भयानकता आ गई थी.

फिर पानी आंगन पार कर के झोपड़ी के भीतर घुस आया. चूहो के बिलो में पानी भर जाने के कारण वे बाहर निकल पड़े उन के बाल भीग कर छोटीछोटी, काली, नुकीली चोचो की तरह आपस मे चिपक गए थे. कभीकभी वे चीची करते हुए इधरउधर भागते थे, कभी पानी मे स्थिर खड़े रहते थे. वे कूदकूद कर ऊंचे स्थानों पर चढ़ते जा रहे थे और पानी बढ़ रहा था...

झोपडी की जमीन में फिसलन पैदा हो गई और लछमन से खड़ा रहना मुश्किल हो गया. वह जिधर भी पांव जमाता, फिसलने

लगता. अब ये लोग अपने पंजों को न देख सकते थे. लछमन कुसिल्या से चिपट गया.

"घबराओ नईं, पानी उतर जाएगा."— झमकू बारबार फुसफुसा रहा था हालांकि वह खुद जानता था, उस के शब्द बेवकूफी भरे है.

भररर!

झोपड़ी की मोरी की दीवार अचानक ढह गई. पानी के छीटे उड़ कर सब के चेहरों पर चिपक गए. कुसिल्या चौक कर फिसली और उठने की कोशिश में एक बार और फिसली. उस के चेहरे पर मिट्टी पुत गई और उस डरावने वातावरण में भी झमकू हंस पड़ा. फिर झमकू अपनी हंसी से खुद ही डर गया और चुप हो गया और कुसिल्या की गालियों को सुनता रहा—"बरखा! ए ही हवै तोर बरखा, हत्यारन बरखा! सत्यानास कर दिस. जान ले बिन नईं छोड़ेगी. सब को भरखेगी. इन्दर की मति भरस्ट होगै हवै. कलजुग में जो न होय सो थोड़ा. रोगही! भड़वी!"

उस गिरी दीवार ने बाहर की दुनिया को इन के सामने उघाड़ दिया. कुत्ते के पिल्ले की एक लाश बहती हुई जा रही थी. मुर्गियों के कई शरीर पानी में घिसट रहे थे. कुछ मुर्गियां मर गई थीं, कुछ मर रही थी, कुछ मरने वाली थी. लोग ऊंची जगहों पर चढ़ते जा रहे थे. भैंसेभैंसियां रम्भाती हुई पानी में तैर रही थीं. उन के स्वर में भय की स्पष्ट छाया थी. मक्खियो की भिनभिनाहट बढ़ती जा रही थी क्योंकि पानी ने उन के बैठने के सभी स्थानो को निगल लिया था. उन के बड़ेबड़े दल कई बार झोपड़ी मे घुस आते, मंडराते, फिर बाहर निकल जाते. उन के बाहर उड़ने में एक भयानक चेतावनी सूंघी जा सकती थी—'भागो! भागो!'

लेकिन कहां?

चारों ओर केवल पानी ही पानी था...गन्दला, पीला पानी, जिस में पक्षियों के घोंसले, चूजे, अंडे बह रहे थे...छोटीछोटी लकड़िया, टोकरियां, रसोई की चीजें...कपड़े...कागज...

दूज ने कहा—"ददा! हम मन ला कहीं चढ़ा देवौ. झोपड़िया तो गिर के रहही!"

पानी घुटनों तक चढ़ आया था. झमकू बाहर निकला, फिसलन से लड़ता हुआ, सम्हलता हुआ. सामने दो पेड़ थे लेकिन उन पर लोगों ने अड्डे जमा लिए थे. बन्दरों की तरह वे उन की शाखाओं से लिपटे हुए थे. उन पेड़ों में अब और किसी के भी लिए जगह नहीं थी. उन लोगों में से अधिकांश को झमकू पहचानता था लेकिन वह जानता था, कोई भी उस की मदद न करेगा...

उस की आंखें सिकुड़ कर छोटी हो गईं और चारों ओर घूमने लगी. कहीं भी—दूर तक कहीं भी खाली पेड़ नहीं था. पेड़ पर चढ़े लोग दूसरे लोगों को चढ़ने न दे रहे थे—वे उन्हें धक्के दे कर गिरा रहे थे. उन्हें भय था, वजन बढ़ने पर पेड़ उखड़ जाएगा...

"झोपड़िया पै चढ़ जाओ. अऊ कोनू उपाय नईं हवै!" —हार कर उस ने एक निःश्वास छोड़ते हुए कहा. वे किसी तरह छत पर चढ़े.

पानी चढ़ता गया...चढ़ता गया...झोपड़ी की छत कभी भी बैठ सकती थी. उस की एक ओर दीवार गिरी...भररर...कुसिल्या और दूज चीख कर एकदूसरी से लिपट गईं.

और अचानक दूज के उभरे वक्ष को कुसिल्या ने महसूस किया. उसे याद आ गया, वह दूज की शादी की बातचीत चला रही

थी...केजऊ के साथ...लेकिन पहले इस पूर से तो छुटकारा हो... आशाएं उस की आंखों में कौंधी और बुझ गई. उस ने अपनी टुरी की ओर देखा जिस का भयभीत चेहरा आवश्यकता से अधिक धुला मालूम पड़ रहा था और जिस की आंखें रो रो कर सूज गई थीं.

छत थोड़ी सी हिली...झमकू ने निराशा से कुसिल्या की ओर देखा...अब छत बैठेगी और...

"छत की कोनू (किसी) लकड़ी से चिपट जाबै! छोड़बै झन. भगवान मालिक हवै."—उस ने दूर से कहा. फिर उस की दृष्टि कमजोर लछमन पर पड़ी जो रो रहा था. उस का जी चाहा, लछमन की ओर बढ़े और उसे अपने से चिपटाए लेकिन जरा सा हिलते ही छत फिर से कांपने लगी...

कुसिल्या से उस ने कहा—"तोर हाथ में कोनू लकड़ी आ जाए तो टुरी ला दे देबै. तैं मर जाबै, पर ओला (उसे) झन मरन देबै."

उत्तर में कुसिल्या ने बरखा को ढेर सारी गालियां दे डालीं और इस बार झमकू उन गालियों का विरोध न कर पाया. सचमुच इन सारी मुसीबतों का कारण बरखा ही तो थी...

और जो बात कुसिल्या को याद आई थी वही उसे भी कुरेद गई...दूज की शादी की बात...आहा! कितने प्यारे सपने देखे थे उन लोगों ने...शादी के लिए साहूजी कर्जा भी देने को तैयार थे...लेकिन यह पूर...

सहसा एक तना, जिस पर केवल कुछ पक्षी थके हारे बैठे थे, उधर से निकला. झमकू पानी में कूद पड़ा, तैरता हुआ उस के पास पहुंचा और धकेल कर उसे छत से लगाने की कोशिश करने लगा. पानी के जोर में बहते तने को घसीटना आसान बात न थी—उस का दम फूल गया.

वे चारों तने पर चढ़े. तना आधे से ज्यादा पानी में डूब गया. वह पानी के साथ आगे चला. पता नहीं किधर...

सब ने झोपड़ी की जर्जर छत की ओर देखा और एक आवाज हुई...कड़ड़ड़! ...भड़ड़ड़! ...आकाश में घिरते बादलों ने अट्टहास किया. फिर छत बैठ गई...बड़ी खामोशी के साथ. यदि कुछ ही क्षणों की और देर हो जाती तो...कुसिल्या और दूज तैरना नहीं जानती थीं. वे तो जरूर...लछमन भी कहां तक तैर पाता...वह भी...और कुशल तैराक झमकू भी तो आखिर कभी न कभी थकता ही...तो क्या पूरा कुटुम्ब...?

बरखा!

हत्यारन बरखा! कलमुही! रोगही! भड़वी बरखा!

अचानक झमकू भी विद्रोह कर उठा. बरखा को गालियां देने के लिए कुसिल्या को लताड़ने वाला झमकू आज खुद...

तीन मिलीजुली चीखों ने उस को चौंका दिया. ये तीन चीखें कुसिल्या, दूज और लछमन की थीं.

एक बहुत बड़ा तना इस तने की ओर बढ़ रहा था. उस पर तीन आदमी और एक बच्चा बैठे थे. वे सब कांप रहे थे. तने की दिशा बदलने की वे पूरी कोशिश कर रहे थे लेकिन यह उन के बस की बात नहीं थी.

दोनों तने टकराए. बड़ा तना पानी में हिला और हिलता रहा लेकिन इन लोगों का तना पूरा एक चक्कर घूम गया. तेज झटके के कारण लछमन पानी में गिरा और उस के बाद गिरी दूज...

लछमन हाथपैर फटकारने लगा लेकिन भय के कारण उस

की ताकत खत्म हो रही थी. झमकू एक क्षण तो समझ ही न पाया, किसे पहले बचाए. फिर वह बिफर गया, मानो बरखा की सारी ताकत उस के सामने कुछ न हो. हुंकार कर वह पानी में कूदा और डूबती दूज की ओर बढ़ा. परन्तु वह दूज तक न पहुंच पाया...पानी ने दूज को और उस की चीखों को निगल लिया. अथाह पानी में पता नहीं वह कहां खो गई. बौखला कर वह लछमन को बचाने भागा लेकिन लछमन के डरे हुए दिमाग ने उस के हाथपैरों का साथ न दिया. झमकू ने एक आभास सा पाया उस का. वह पानी से लड़ रहा था. एक लहर आई और वह गायब हो गया...

"लछमन!"—वह चिल्लाया लेकिन अपनी आवाज खुद उसे ही सुनाई न पडी.

फिर उस ने कुसिल्या की तलाश में दृष्टि दौड़ाई—दृष्टि, जो धुंधली पड़ती जा रही थी. उस ने देखा, इतनी देर में उस का तना काफी दूर निकल गया था पर एक बात से उसे ढारस मिला. उस ने देखा, तने से कुसिल्या लिपट रही थी. भगवान करे उस के हाथ से तना न छूटे...

फिर उसे लगा, वह हांफ रहा है—बुरी तरह, और उस की ताकत पिघल रही है...

जाने कैसे उन्होंने एकदूसरे को देख पा लिया. वे एकदूसरे से लिपट गए. अब वे पांच नहीं थे, केवल दो थे. लेकिन वे जानते थे कि वे फिर से पांच हो सकते थे, पांच से ज्यादा भी हो सकते थे.

बरखा चली गई थी. ठंड के सफेद पंजे ने धरती को दबोचने की पूरी तैयारी कर ली थी.

इन दोनों ने एक झोपड़ी बनाई—नई झोपड़ी, और उन सारी चीजों को इकट्ठा करने लगे जो बरखा छीन कर ले गई थी.

वे दोनों कई दिनों तक बरखा को गालियां देते रहे.. भद्दी-भद्दी गालियां...फिर उन की गालियां कम होती गईं.

अब वे रोज बरखा को गालियां न देते, कभी कभार दे लेते.

एक दिन उस ने उस के कन्धे पकड़ लिए और उस के गले से भर्राई आवाज निकली—"कुसिल्या!"

कुसिल्या ने झमकू की आंखों में आंखें पिरो दीं.

"जी करथै, मोला (मुझे) रोना चाहिए!"—झमकू ने कहा.

और कुसिल्या ने राह न देखी—रोना शुरू कर दिया. उसे सब याद आ गया...कजरी...किशन...लछमन...दूज...उस की शादी...और वह हिलकहिलक कर रोई. वह झमकू से लिपट गई... झमकू उस से लिपट गया...और दोनों रोते गए...रोते गए...

दोनों ने बरखा को खूब गालियां दीं.

लेकिन उस दिन भुने हुए चने खाते समय झमकू ने जब कुसिल्या के उन होंठों की ओर देखा जो चनों की हल्दी के कारण पीले पड़ गए थे, तो अचानक वह पूछ बैठा—"बरखा आने में कतेक (कितने) दिन हवैं?"

नासपातियां

नासपातियों के कारण मैं कई बार इतनी पिटी कि लगभग मरतेमरते बची. मेरी अम्मा ने हर बार मुझे दातून की छड़ से मारा. वह समझती थी, दातून की छड़ की मार किसी बच्ची के लिए कड़ी से कड़ी सजा हो सकती है. क्रोध की चरम सीमा पर पहुंचने पर वह मुझ पर दातून की छड़ ही चलाती थी. मेरे अनुसार बाबूजी का तेलपिया डंडा दातून की छड़ से ज्यादा भयानक था, अतः अम्मा के इस गलत ख्याल के लिए मैं ईश्वर को लाख धन्यवाद देती थी—उसी ईश्वर को, जिस ने मुझे नासपातियां दी थीं.

बाबूजी के कमरे में दरवाजे के पास वाले कोने में उन का चिकना व चमकदार डंडा खड़ा रहता था. मुझे वह चौकीदार सा मालूम पड़ता था. लगता था, उस की दो आंखें भी हैं जो मेरी नासपातियों को देख रही हैं. कई बार मुझे बाबूजी पर बड़ा गुस्सा आता कि क्यों वह उस एक ही कोने में अपना डंडा खड़ा करते हैं. मुझे उस से बड़ा डर लगता था. कमरे में घुसते ही मेरी आंखें वहीं जा कर टिक जाती थीं और फिर मैं आपे में न रहती थी. जागते हुए भी मानो मैं सपना देखने लगती थी. मुझे ऐसा महसूस होता था मानों किसी ने मेरे कपड़े उतार लिए हैं और मैं बर्फानी हवा के सपाटों के बीच खड़ी हूं. ये सपाटे इतने तेज हैं कि किसी भी क्षण मैं उड़ जाऊंगी. उड़

कर जब मैं जमीन पर गिरूंगी तो मर जाऊंगी. या फिर मुझे ऐसा लगता था मानो हवा के उन सपाटों में लम्बेलम्बे डडे उड़ रहे हैं—ठीक उसी तरह, जिस तरह तूफान के समय पत्ते उड़ते हैं. वे डंडे अपनी लम्बीलम्बी आंखें फाड़ कर मुझे देखते हैं और देखते ही मुझ पर झपट पड़ते हैं. मैं चीखती हूं और वे तीर की तरह चारों दिशाओं से झपटते चले आते हैं और मेरे शरीर के आरपार निकल जाते हैं. मैं लहूलुहान हो कर जमीन पर उलट जाती हूं और मर जाती हूं.

मरने की कल्पना आते ही मैं फिर से चीख उठती. चीख सुनते ही अम्मा आ कर मुझे अपनी छाती से भींच लेती. वह रोती हुई मुझे चूमने लगती और मेरे गालों पर से बालों की लटें हटाती हुई पूछती—"तुझे क्या हो गया है मेरी प्यारी निक्की?"

मैं कहती—"मुझे कुछ नहीं हुआ है. मुझे बाबूजी के डंडे से डर लगता है. उसे उस कोने से हटा दो."

"मेरी मुन्नी! मेरी चिड़ी! मेरी अम्मा!"—कहती हुई वह फिर से मुझे चूमने लगती. फिर वह डंडे को उस कोने से हटा कर पलंग के नीचे छुपा देती.

कई बार मैं ने मांग की थी कि वह उस डंडे को फेंक दे या उसे जला कर उस आंच से मुझे चाय बना कर पिलाए. लेकिन अम्मा ऐसा न कर सकती थी. अम्मा बाबूजी से डरती थी और वह डंडा बाबूजी को बहुत प्रिय था. एक शिकारी दोस्त ने सालगिरह पर वह डंडा उन्हें सौगात में दिया था.

मेरे चीखने पर अम्मा उस डंडे को कोने से हटा तो देती लेकिन ज्यों ही बाबूजी के दफ्तर से लौटने का समय होता, वह उसे फिर से चौकीदार की तरह वहीं खड़ा कर देती. इस का कारण यह था कि बाबूजी अपने कमरे में घुसते ही पहले उस को देखते और

उस के बाद ही अपना कुर्ता उतार कर हैंगर पर टांगते. यदि वह वहां न होता तो वह चीख पड़ते. तब घर की सारी दीवारें थर्रा कर खामोश हो जातीं और मेरी व अम्मा की धड़कनें रुकने लगतीं. बाबूजी की चीखों से कई बार मैं ने छिपकलियों व मकड़ियों को बेहोश हो कर छत से नीचे टपकते देखा था.

उस दिन मैं ने अम्मा को यह बात बताई तो वह हंसतीहंसती दोहरी हो गई. मैं समझ न सकी, इस में इतना ज्यादा हंसने की क्या बात है. मुझे विश्वास था, मैं जो कह रही हूं, झूठ नहीं है. लेकिन अम्मा ने उसे झूठ करार देते हुए कहा—"नहीं निक्की, छिपकलियां और मकड़ियां अपने आप नीचे टपकती हैं. उन्हें बाबूजी से डर नहीं लगता क्योंकि बाबूजी उन्हें पकड़ नहीं सकते."

हालांकि अम्मा मुझे दातून की छड़ से मारती थी लेकिन वह मुझे प्यारी लगती थी. उस के साथ बैठ कर मैं अपनापन महसूस करती थी. शायद इस का कारण यह था कि मेरी तरह वह भी बाबूजी से डरती थी. कई बार मैं स्वयं को यह विश्वास दिलाती थी कि बाबूजी अम्मा को जरूर अपने डंडे का स्वाद चखाते होंगे. तभी तो अम्मा इतना डरती है लेकिन यह काम बाबूजी अकेले में करते होंगे. अम्मा को सब के सामने नहीं पीटा जा सकता क्योंकि यह अम्मा की इज्जत का सवाल है. दोपहर को या रात को जब मैं सो जाती होऊंगी तो किसी बात को ले कर, शायद पपीतों को ले कर अम्मा पिटती होगी. उस समय अम्मा रोती न होगी, क्योंकि वह लड़की नहीं, एक औरत थी.

नासपातियों और पपीतों से मुझे सख्त नफरत हो गई थी. ये दोनों हमेंशा सिरफुड़ौवल का कारण बनते थे. मैं ने देखा था कि ऐसा केवल हमारे घर में ही नहीं होता था, पड़ोस के लालाजी के यहां

भी होता था. उन की बेटी भी नासपातियों के कारण अकसर मार खाती रहती थी. उस का नाम चीकू था. उस के गाल बहुत फूले हुए थे जिस से लोग उसे चीकू कहते थे. लोग उस के गोलगोल गालों को चूमते और और कहते—आहा! ये चीकू की तरह मीठे हैं. लेकिन मुझे मालूम था कि वे सब झूठे थे. मैं ने स्वयं चीकू के गाल चूम कर देखे थे. मुझे उन में जरा भी मीठास न मिली थी. बल्कि वे तो नमकीन थे.

मैं ने चीकू को केवल एक बार चूमा. चीकू ने मुझे उस दिन जोरदार तमाचा मारा और धमकी दी कि वह मुझ से दोस्ती का नाता तोड़ देगी. मैं ने उसे समझाना चाहा कि मैं केवल उस के गालों का स्वाद चखना चाहती थी. मेरी बात सुन कर वह हंसने लगी. लेकिन उस के बाद फिर मैं ने उसे दूसरी बार चूमने का साहस न किया.

उम्र में चीकू मुझ से बहुत बड़ी थी. वह मुझ से ऊंची भी बहुत थी. सब कहते थे कि वह जवान हो गई है. पहले मैं जवानी का मतलब नहीं समझती थी. मैं सोचती थी कि लड़के की मूंछें आने पर वह जवान हो जाता है. उसी तरह लड़की की नासपातियां आने पर वह जवान हो जाती है. इस हिसाब से मैं भी जवान हो गई थी क्योंकि मेरी नासपातियां चीकू से ज्यादा छोटी नहीं रह गई थीं. लेकिन बाद में मेरा सोचना गलत निकला.

अम्मा से मैं ने कहा—"क्या तुम्हें मेरी शादी की फिक्र नहीं है? तुम ने देखा होगा कि चीकू के बाबूजी और अम्मा कितने परेशान हैं. और एक तुम हो कि बेटी की जवानी की तुम्हें जरा भी फिक्र नहीं है."

मैं ने देखा, सुनते ही अम्मा की आंखें फट गईं. वे आंखें मेरे चेहरे पर टिक गईं, उस के बाद वे चेहरे से उतर कर मेरी नासपा-

तियों पर टिक गईं. फिर वे नीचे झुक गईं और अम्मा की गोद पर टिक गईं. उस के बाद वे फिर से ऊपर उठीं और फिर से मेरी आंखों पर टिक गईं. उन में आंसू छलक आए थे. अम्मा ने पलकें झपकाईं तो आंसू टूट कर नीचे गिर पड़े. फिर अम्मा ने हाथ बढ़ा कर मेरी बांह पकड़ ली. उस की पकड़ इतनी कड़ी थी कि मुझे लगा, उस की उंगलियां मेरे मांस में घुस जाएंगी. मैं हक्कीबक्की रह गई. शादी करवाने की मेरी सारी हौस गायब हो गई. एक छोटी सी बात का ऐसा प्रभाव अम्मा पर पड़ेगा यह मैं ने सोचा भी न था. अम्मा मुझे झक-झोरने लगी. मुझे लगा मेरी पसलियां टूट जाएंगी. मैं ने उसे फुस-फुसाते सुना—"तुझे क्या हो गया है लौंडिया? हाय! मैं क्या करूं." फिर उस ने एक गर्म सांस छोड़ कर मुझे अपने से भींच लिया. उस के दिल की धड़कन मेरे गालों से टकराने लगी. मैं झुंझला पड़ी. यह झुंझलाहट इतनी नुकीली थी कि मुझे रोना आ गया. पिछले कई माहों से रोज मैं अम्मा के मुंह से एक ही फुसफुसाहट सुनती थी—"हाय मेरी लौंडिया, क्या हो गया है इसे!" मैं जानती थी, मुझे कुछ नहीं हुआ है—मैं बिलकुल भली चंगी हूं. लेकिन आज पहली बार मेरा विश्वास टूट गया. मुझे लगा, सचमुच मुझे कुछ हो गया है—कुछ, जो मेरी समझ के परे है. और इस कुछ का कारण मेरी नासपातियां थीं.

रात को मैं देर तक जागती रही. मैं समझने की कोशिश कर रही थी कि मुझे क्या हो गया है. ये नासपातियां इतनी रहस्यमय क्यों हैं? चीकू की भी तो नासपातियां हैं, बल्कि उस की तो मुझ से बड़ीबड़ी हैं. फिर क्यों केवल मेरी ही नासपातियों की ओर लोग विचित्र निगाहों से देखते हैं?

फिर मुझे याद आया कि मेरी तरह चीकू भी मार खाती है—नासपातियों के ही कारण. लेकिन चीकू इसलिए मार खाती है कि एक

दिन वह पाशी को अपनी नासपातियां दिखा दिखा कर हंस रही थी.

पाशी एक ऊंचा पूरा जवान था. उस की बढ़िया मूंछें थीं. रोज सुबह वह बाबूजी की तरह दाढ़ी पर साबुन लगा कर झाग पैदा करता, फिर किर्र किर्र शेव करता. वह किसी दूसरे शहर में पढ़ता था. हर दो एक शनिवारों की आड़ वह शहर से यहां आ जाता और इतवार की छुट्टी घर पर बिता कर सोमवार को वापस चला जाता.

उस के दुमंजले कमरे की खिड़की हमारे पिछवाड़े के बगीचे में खुलती थी. उस के परदे मुझे बड़े प्यारे लगते थे. अकसर मैं बगीचे में खड़ी हो कर खिड़की की ओर देखती थी. वैसे मैं बगीचे में जाना अधिक पसन्द न करती थी क्योंकि बगीचे में नासपातियों के झाड़ थे जो मुझे अपनी दुष्ट नासपातियों की याद दिला देते थे—दुष्ट, शैतान नासपातियां, जो मुझे इतनी मार खिलाती थीं. लेकिन उन परदों का मोह मुझे अकसर बगीचे में खींच लाता. मैं किसी छाया में खड़ी हो कर उधर ताकती रहती.

एक दिन मैं ने देखा, पाशी वहां बैठा हुआ कोई पुस्तक पढ़ रहा है. अचानक उस ने नीचे की ओर बगीचे में झांका. मैं ने सोचा, शायद वह मुझे देख रहा है लेकिन उस की आंखें दूसरी दिशा में थीं. मैं उस दिशा में देखने लगी. वहां चीकू खड़ी थी. उस की पीठ मेरी ओर थी लेकिन उस के चेहरे के दिखाई पड़ रहे हिस्से से मुझे पता चला कि वह हंस रही थी. पहले उस ने हंसते हुए पाशी को जीभ दिखाई, फिर अंगूठा दिखाया, फिर दाहिनी नासपाती दिखाई.

पाशी ने इशारा कर के चीकू को ऊपर बुलाया. चीकू ने नासपाती को अभी ढका न था. दोपहर का सन्नाटा छाया था. हम तीनों के सिवा वहां कोई न था. मैं ने सोचा, पाशी चीकू से बातें करना चाहता होगा. तभी उसे ऊपर बुला रहा है. जब से मैं ने होश

सम्हाला था, इन दोनों को मैं ने दो बहुत प्यारे दोस्तों की तरह आपस में धींगा करते देखा था.

मैं ने चीकू की नासपाती की ओर देखा. मैं उस के साथ अपनी नासपाती की तुलना करना चाहती थी. मेरी इच्छा उसे और पास जा कर देखने की हुई. मैं उधर अपने कदम बढ़ा भी देती लेकिन उसी समय मैं ने देखा कि पाशी हड़बड़ा कर खिड़की से उठ गया.

फिर एक अजीब सा नाटक मेरे सामने खेला गया. मैं ने देखा, लालाजी का भीमकाय शरीर चीकू के सामने खड़ा हुआ कांप रहा था. उन के तमतमाए चेहरे पर क्रोध उफन रहा था. चीकू ने नासपाती ढक ली. अगले ही क्षण लालाजी ने चीकू की नाक पर जोरदार मुक्का मारा. चीकू जमीन पर उलट गई. उस की नाक से खून टपकने लगा. गिरते ही वह उठ खड़ी हुई. लालाजी ने अपना रुमाल उस की नाक से दबाया और लगभग खींचते हुए वह उसे घर में ले गए.

आश्चर्य यह था कि इतना खौफनाक मुक्का पड़ने पर भी चीकू ने चूं तक न की. गुस्से में शेर की तरह दहाड़ने की लालाजी की आदत थी लेकिन आज उन्होंने भी एक छोटी सी आवाज तक न की. उन्हें पता नहीं था कि मैं ने यह नाटक देख लिया है. उन्होंने मुक्का मारा उस समय मैं जरूर चीख पड़ती लेकिन सारा काम खामोशी और रहस्यमयता से होते देख मेरी चीख भीतर ही घुट कर रह गई.

कमरे में वापस लौट कर बहुत देर तक मैं इस पर सोचती रही लेकिन कुछ भी समझ में न आया. अन्त में मैं ने अम्मा से पूछने का निश्चय किया. इतने दिनों में यह मैं समझ गई थी कि नासपातियों की बातें हमेशा अकेले में करनी चाहिए. मैं अम्मा के साथ एकान्त की टोह में लगी. शाम को मुझे मौका मिला.

मेरी बात सुनते ही अम्मा का चेहरा लाल हो गया. यह लाली गुस्से की न थी, शर्म की थी. कई क्षण खामोशी में गुजरे और मैं घबड़ाने लगी. फिर मैं ने पूछा—"बताओ न अम्मा, चीकू रोई क्यों नहीं? लालाजी ने भी कुछ न कहा, केवल मुक्का मारा."

"निक्की! यह बात किसी को मत बताना."

"क्यों?"

"तुम अच्छी लड़की हो न?"

"हां."

"अपनी अम्मा का कहना न मानोगी?"

"मानूंगी! लेकिन क्यों?"

"तुम नहीं समझोगी."

"क्यों?"

अब की अम्मा ने मुझे बुरी तरह झिड़क दिया और मैं मन मसोस कर रह गई. नासपातियों की ज्यादा बात करने पर मुझे मार पड़ती थी.

तुरन्त मुझे बाबूजी का डंडा याद आ गया. फिर याद आई अम्मा की दातून की छड़. बाबूजी का डंडा सालों पुराना हो गया था लेकिन दातून की छड़ हर दो दिनों में बदल जाती थी. हमारे शहर में शाम के समय दातून बेचने वाले फेरी लगाते थे जिन से लोग रोज की एक या दो या दो दिनों में एक छड़ के हिसाब से दातून बंधवाया करते थे.

हमारे यहां एक लड़का दातून देने आता था. मैं अकसर

उसे ध्यान से देखा करती क्योंकि वह लड़कियों की तरह कान में बुन्दे पहनता था.

कई बार मैं उस से बहुत चिढ़ती थी क्योंकि दातून की छड़ें, जिन से मैं पिटती थी, वही लाता था; लेकिन फिर मैं सोचती कि यह तो उस का धन्धा है. उसे भी मेरी नासपातियों को घूरने की आदत थी लेकिन मुझे खास बुरा न लगता था. मेरे आसपास के सभी व्यक्ति, यहां तक कि कई बार तो अम्मा और बाबूजी भी मेरी नासपातियों को घूरते थे. मुझे इस की आदत पड़ गई थी.

मैं ने सोचा कि यह लड़का—उस का नाम सोनी था—जाने कहांकहां घूमता रहता है. इसे सब मालूम होगा.

एक दिन शाम को उसे देर हो गई. अन्धेरा घिरने लगा. मैं अपनी सहेलियों के साथ गली में खेल रही थी. खेल में मेरा मन न लग रहा था. मैं तो इस बहाने सोनी की राह देख रही थी. थोड़ी देर में सोनी ने घर में दातून की छड़ फेंक कर हांक लगाई—"दातून!" और आगे चला गया.

तुरन्त मैं खेल से अलग हो गई. मैं ने सहेलियों से बहाना बनाया कि मुझे एक सहेली के घर जाना है. मैं ने तेजी से सोनी के पीछे कदम बढ़ाए. क्योंकि सोनी को बारबार घरों में दातून फेंकने के लिए रुकना पड़ता था, उसे पा लेने में मुझे देर न लगी.

मैं ने आसपास दृष्टि फेंकी. गली में जो बच्चे शोर कर रहे थे, उन का ध्यान मेरी ओर न था. अन्धेरा पहले से ज्यादा घिर आया था क्योंकि गली की बिजली किसी गड़बड़ी के कारण खराब हो गई थी.

मैं सोनी के पीछे जा कर धीमे से फुसफुसाई—"सोनी..."

वह एकदम रुक गया—मानो मेरे पुकारने की ही राह देख रहा हो. फिर वह फुर्ती के साथ पलट गया और अब पीठ की जगह उस का चेहरा मेरे सामने था.

और...

मुझे लगा, मैं ने सोनी के पीछे आ कर और उसे पुकार कर बहुत बड़ी भूल की है. मानो सोनी का सिर नहीं था—गर्दन पर एक बड़ी सी चमकदार आंख थी—बस !.. और वह आंख घूर रही थी मेरी नासपातियों को...मैं ने लौट कर भागने की सोची लेकिन साहस से काम लिए बिना उस दिन के नाटक का रहस्य समझ पाना असम्भव था. अम्मा तो अब उस प्रसंग को छेड़ते ही मानो गुर्राने लगती थी. बाबूजी से मैं आंख मिलाते भी डरती थी, नासपातियों की चर्चा करना तो बहुत दूर की बात थी. एक सोनी था जो कुछ बता सकता था.

"क्या है?"

"एक बात पूछनी है."—मेरी धड़कन तेज होती जा रही थी.

"क्या?"

"यहां नहीं, इस नुक्कड़ के उधर चलो."

बिना किसी एतराज के उस ने कहा—"चलो!" उस के स्वर में मुझे खुशी का भी आभास मिला जिस का कारण मैं न समझी.

नुक्कड़ के उधर एक झाड़ी थी जो अन्धेरे में खरगोश की तरह दुबकी हुई थी. उस की आड़ में जा कर मैं ने सोनी की ओर देखा. मेरी कनपटी पर मानो कोई थपकियां दे रहा हो ..सोनी मेरे बिलकुल पास खड़ा था. मैं समझ न पा रही थी, वह बात किस तरह पूछूं. पूछने के लिए जो जो शुरुआतें मैं ने सोच रखी थीं, वे सब

अचानक मेरे दिमाग से कपूर की तरह उड़ गई. हकलाते हुए मैं ने कोशिश की—"वह...वह जो चीकू है न? ...वो और पा..."

सोनी ने झपट कर मुझे भीच लिया और बुरी तरह चूम लिया. मैं सकपका गई. लगा, अभी चीख पड़ूंगी, लेकिन न चीख सकी. मैं कांप रही थी. उस के हाथ मेरी नासपातियों को छू रहे थे. मैं ने उसे जोर से झटका दिया और भाग कर गली में आ गई. अन्धेरे में गिरती पड़ती मैं किसी तरह घर पहुंची तो दम फूल गया था. अम्मा ने पूछा—"क्या है री?"

"कुछ नहीं. यों ही दौड़ती हुई आई."—लेकिन मेरा स्वर बदल गया था. "पानी! पानी दो मुझे!"

"पानी?"—अम्मा ने झिड़की दी—"दिमाग खराब हो गया है क्या? खेल कर आई हो, ऊपर से पानी पियोगी तो सीधा खून में मिल जाएगा. थोड़ा ठहरो."

बिना कुछ जवाब दिए मैं कमरे में घुस कर खाट पर गिर पड़ी. लगा, बड़ी पापिन हूं. पाप कितना भयानक होता है यह अम्मा ने कई बार मुझे बताया था. किसी को गाली देने पर मरने के बाद जीभ पर कांटे उगते हैं. किसी चिड़िया को पत्थर मारने पर नर्क के राक्षस शरीर में छुरे घोंपते हैं.

"और यह चीकू भी पाप करती है."—मेरे बहुत जिद करने पर एक बार उस ने कहा था.

"किस तरह?"

उत्तर में अम्मा चुप्पी साध गई थी.

चीकू के जैसा ही कुछ कुछ आज मेरे साथ भी तो हुआ था.

क्या यह पाप है? और यदि यह पाप है तो इस का कारण है नास-पातियां. न ये होतीं, न मैं उस दिन वाली घटना को ले कर इतनी परेशान होती और न मुझे सोनी से पूछने की जरूरत ही पड़ती. यदि मेरी नासपातियां न होती तो जरूर मैं अब तक पाशी वाली घटना भूल चुकी होती.

आधी रात तक किसी अदृश्य आग में जलती हुई मैं करवट बदलती रही पर नींद न आई. रह रह कर मैं अपने आप को धिक्कारती थी. एक बात का मैं निश्चय कर चुकी थी—इस के बारे में मैं चुप्पी साध जाऊंगी. न किसी को पता चलेगा, न कोई मुझे जलील करेगा...

लेकिन अम्मा को पता चल कर रहा. मुझे दूसरी बार पाप करना पड़ा और इस बार अम्मा ने मुझे रंगे हाथों पकड़ा और जिन्दगी में पहली बार मैं इतनी पिटी—पहले अम्मा ने दातून से मुझे धुना, फिर बाबूजी ने डंडे से मेरा सिर फोड़ दिया.

सोनी गुंडा निकला. उस दिन के तीन दिन बाद मुझे गली में रोक कर बोला—"रात होते ही वहीं मिलना नहीं तो तेरी अम्मा को सब बता दूंगा."

मेरी जान सूख गई. नहीं! मेरे इस पाप का पता अम्मा को नहीं चलना चाहिए. दौड़ कर मैं एक नुक्कड़ की आड़ में हो गई. मेरा चेहरा तमतमा आया था, रगों में आग दौड़ रही थी.

अब क्या करूं? क्या दूसरी बार...?

रात होते ही कांपती हुई मैं उस झाड़ी के पास पहुंची. सोनी पहले से ही वहां खड़ा था. मैं ने उस से विनती करनी चाही—"भैया! मैं तुझे राखी बांधूंगी. मेरा पीछा छोड़ दो." कुछ लड़कियों

ने मुझे बताया था कि किसी गुंडे से पिंड छुड़ाने के लिए भैया कह देना चाहिए. लेकिन दहशत के मारे मेरा गला सूख गया था—शब्द उठ उठ कर हलक में फंसने लगे और मैं घबड़ा कर कांपने लगी.

इस बार भी सोनी ने बिना कुछ कहे पूछे झपट कर मुझे दबोच लिया और चूमने लगा. फिर वह धक्के दे कर मुझे जमीन पर गिराने की कोशिश करने लगा लेकिन उसी समय किसी ने मुझे गिरने से रोक लिया.

वह अम्मा थी.

वह कांप रही थी—ठीक उसी तरह, जिस तरह उस दिन चीकू के सामने लालाजी कांप रहे थे. मैं चुप थी—चीकू की तरह. वह चुप थी—चीकू की तरह. सोनी का गला अम्मा ने पकड़ लिया था और सोनी चुप था—चीकू की तरह. जब अम्मा ने उस के चेहरे पर दनादन मुक्के मारे और नकोरना शुरू किया, तब भी वह चुप रहा. वह मार खा कर जमीन पर गिर पड़ा. अम्मा ने उसे जोर से लात मारी और मुझे आंचल में छुपा कर तेजी से वापस लौटने लगी. हम दोनों कुछ न बोलीं. मैं कांप रही थी.

मुझे सब समझ में आ गया था—चीकू और लालाजी ने वह नाटक खामोशी में क्यों खेला था. चीकू पाप कर रही थी...वह चिल्लाती तो सब को पता चल जाता. और चीकू लालाजी की लड़की थी...लालाजी चिल्लाते तो भी सब को पता चल जाता.

आज मैं चुप रही...मैं पाप कर रही थी. अम्मा चुप रही, क्योंकि उस की बेटी पाप कर रही थी. दोनों में से कोई भी चिल्लाता तो सब जान जाते...फिर मैं बदनाम हो जाती—चीकू की तर....

और सोनी चुप रहा...क्योंकि पता चलने पर उस की रोजी मारी जाती.

ओह! बात कहा मे कहां पहुंच जाती है. और यह सब केवल इन नासपातियों के कारण होता है. चीकू की दुर्दशा भी नास-पातियों ने ही की और अब नासपातियों की शिकार मै हो रही हू...

अम्मा मुझे लगभग घसीटती हुई ले जा रही थी. उस ने कोहनी के ऊपर से मेरी बाह पकड़ रखी थी और झटके दे कर अपना गुस्सा प्रकट कर रही थी.

घर आ कर उस ने कमरे को चारों ओर से बन्द कर लिया. मैं ने कोई विरोध न किया. मैं ने पाप किया था और अम्मा मुझे उस की सजा देने जा रही थी—अच्छा ही था. दातून की छड़ पकड कर वह तना हुआ चेहरा लिए कुछ देर तक यों ही सामने की दीवार को घूरती रही, फिर अचानक मुझ पर टूट पड़ी.

जैसा कि मैं ने तय किया था, मुझे चीखना नही चाहिए था. लेकिन दो तीन बार में ही मेरा मुंह खुल गया और मैं चीख पड़ी—एक चीख के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी चीखें कमरे को कंपाने लगीं. मैं फर्श पर चित हो गई, फिर औधी, फिर चित और मैं जिधर भी होती, दातून की छड़ गर्म सलाख की तरह मुझे झुलसाती...

फिर मुझ में इतनी भी ताकत न रही कि उठ कर बैठ सकूं. अम्मा भी फर्श पर निढाल हो कर पसर गई और हांफने लगी. उस की आंखें बाहर निकलने को हो रही थीं और वे अंगारों की तरह लाल थीं. मेरी चमड़ी पर नीली धारियां छा गई थीं जो आपस में किसी फूहड़ कबूतर के घोंसले के तिनकों की तरह उलझी हुई थीं. अम्मा मुझे बहुत प्यारी लग रही थी—उस ने पाप का बदला ले कर

मेरा उद्धार किया था. अम्मा से अभी तक मैं ने यह नहीं पूछा था कि किसी को गाली देने पर तो जीभ पर काटे उगते हैं लेकिन इस पाप की क्या सजा मिलती है. मैं किसी घायल, कमजोर चिड़िया की तरह अम्मा की ओर सरकी. अम्मा मुझे सरकते देखती रही—चुप. पहले तो मेरे गले से शब्दों की जगह केवल खरखराहट निकली, फिर बूढ़े शब्द बाहर आए—"इस पाप की वहां क्या सजा मिलती है?"

अम्मा ने दौड़ कर मुझे उठा लिया. मेरे कपड़े तारतार हो गए थे. मुझे उठाते ही वे नीचे की ओर लटकने लगे. अम्मा ने मेरे खून से सने चेहरे को चूमा. चूम चूम कर चूमा और फिर चूमा और फिर रोई—फूटफूट कर. मैं भी रोई क्योंकि मेरी प्यारी अम्मा रो रही थी और मुझे पीटने में उस का भला क्या कसूर था क्योंकि पाप तो मुझ से हुआ ही था.

"मैं जानबूझ कर नहीं गई थी..."

और मैं ने सब कुछ कह दिया. वह सुनती रही और हुंकारी भी न दी उस ने—मुझे लगा, मैं किसी मूर्ति से बातें कर रही हूं. मेरी बातें खत्म न हो रही थीं और वह मूर्ति बीचबीच में मशीन की तरह मुझे चूमती जाती थी. फटे कपड़ों से मेरी नासपातियां बाहर आ गई थीं और मैं ने कहा—"मुझे दूसरा फ्राक दो." क्योंकि अम्मा ने ही मुझे सिखाया था कि नासपातियों को कभी भी खुला नहीं रखना चाहिए. नहाते समय भी नहीं.

अम्मा फिर से सिसक पड़ी. उठ कर आलमारी से उस ने कपड़े निकाले, मुझे पहनाए, मेरे घावों को पोंछा, उन पर जलने वाली टिंक्चर लगाई और चूमा और रोई.

रात को बाबूजी लौटे और मुझे खाट पर लेटी देख कर पूछा —"क्या हुआ?"

"कुछ नहीं."—अम्मा ने कहा.

"अम्मा! झूठ नहीं बोलना चाहिए. कह दो कि निक्की को नामपातियों के कारण मार पड़ी है."—मैं बोली.

बाबूजी का मुंह आश्चर्य से खुला रह गया. फिर वह इशारे से अम्मा को बाहर ले गए. बाहर से मैं ने अम्मा की गिड़गिड़ाहट सुनी—"उसे मारना मत. मैं ने अधमरी कर ही दी है."

"पर हुआ क्या?"

आगे की आवाजें फुसफुसाहट में बदल कर हवा में लटक गईं.

थोड़ी देर बाद बाबूजी कांपते हुए भीतर आए. पीछेपीछे अम्मा उन की बाहों को पकड़े घिसट रही थी लेकिन बाबूजी को आगे बढ़ने से रोकना उस के बस की बात नहीं थी. बाबूजी के हाथ में डंडा था. मैं डंडे के छोर को घूरती रही जो पास आता गया और बिलकुल सिर पर आ कर रुक गया और कुछ देर तक रुका रहा. फिर थोड़ा कांपा, फिर ऊपर उठा और तब जोर से नीचे गिर पड़ा. मैं चीखी. सिर के बालों में कुछ गर्मगर्म बहता मैं ने महसूस किया, फिर मेरी चीख डूब गई, आंखें अन्धी हो गईं.

मेरे बदनाम होने का पूरा खतरा था अतः हम लोगों ने मकान बदल लिया और वहां से बहुत दूर चले गए. पाशी और चीकू को कभी देख पाने की अब सम्भावना नहीं थी. कई बार मैं यह सोच कर सिहर उठती कि चीकू की तरह यदि मैं भी बदनाम हो गई तो कहीं की न रहूंगी. चीकू की शादी एक बुड्ढे से हो गई थी क्योंकि वह मुहल्ले भर में बदनाम हो गई थी और कोई भी जवान—यहां तक कि पाशी भी—उसे लेने को तैयार न हुआ था. हालांकि पाशी खुद कम

बदनाम नहीं था लेकिन आखिर वह लडका था और बदनामी से लडके का कुछ नहीं बिगड़ता. अम्मा ने कई बार मुझे समझाया था लेकिन मेरे दिमाग में यह बात कभी न घुसी थी कि लडके लडकी की बदनामी मे ऐसा फर्क क्यों होता है. फिर मैं ने यह सोच कर अपने को मना लिया था कि इस का कारण केवल यही हो सकता है कि लडकों की नासपातियां नहीं होती.

मेरी नासपातियों का नाम नासपाती रखने वाला एक नौकर था जिसे बाबूजी ने पता नही क्यों एक दिन बिना एक माह की तनखा दिए निकाल दिया था. अकसर वह मुझे बताया करता था—"तुम्हारी अम्मा के पास पपीते हैं. तुम्हारे पास अभी नीबू हैं, फिर वे नासपातियों में बदल जाएंगे, फिर आम..." उस नौकर को निकालने के बाद बाबूजी ने प्रतिज्ञा की थी कि घर में केवल नौकरानियां ही रखी जाएंगी. नए घर में सफाई आदि का काम ज्यादा था. इन्ही दिनो बाबूजी दो मन गेहूं ले आए जिस में मिट्टी के दानों की भरमार थी. इस मिट्टी को चुनने के लिए दो नौकरानियां रखी गई थी. वे कालीकलूटी थी और नाक में लाख की लौंग पहनती थी.

एक बार मैं उन के पास से गुजरी तो मैं ने देखा, वे दोनों मेरी नासपातियों को देख कर छुप छुप कर हंस रही थी. मुझे अपनी ओर देखते देखते ही वे चुप हो कर यों काम मे लग गई मानो कुछ भी न हुआ हो. मुझे आग लग गई. इतना गुस्सा मुझे शायद ही कभी आया हो. मै नासपातियों को भुलाना चाहती थी लेकिन लोग मुझे भूलने न दे रहे थे. मैं उन के पास जा कर खडी हो गई लेकिन उन्होंने सिर तक ऊंचा न उठाया. दात पीसते हुए मैं ने चीख कर एक गाली बकी, फिर एक नौकरानी का ब्लाऊज गले से पकड़ कर जोर से झटका दिया. बटन टूट गए और उस के पपीते बाहर आ गए. मैं हंस पड़ी,

फिर नाचती हुई तालियां बजाने लगी. दोनों नौकरानियां जोर से चीख कर उठ खड़ी हुई और सीधी अम्मा के पास पहुंचीं. मैं भी उन के पीछे-पीछे गई. मुझे उस समय संसार की कोई ताकत डरा न सकती थी. मैं तो खुद जा कर अम्मा को बताना चाहती थी—और मैं ने बताया भी, कि मैं ने ऐसा क्यों किया.

दोनों नौकरानियों को अम्मा ने किसी तरह समझा बुझा कर फिर से काम पर लगाया और जब रात हुई तो अम्मा ने दातुन की छड़ से मुझे मारा—पहले के जितना नहीं, लेकिन काफी मारा और फिर बाबूजी ने मुझे डडे मारे—सिर और नासपातियों को बचाते हुए.

मुझ पर दिन ब दिन कड़ी बन्दिशें लगती जा रही थीं. नासपातियों के कारण ही मुझे स्कूल भी न भेजा गया था. वहा लड़कियां मुझे चिढ़ाएंगी ऐसा अम्मा को शक था. पड़ोसिनें जब घर में आती तो मुझ से मजाक किया करतीं—"बच के रहियो छम्मक छल्लो."

अम्मा यदि उन के मजाक सुन लेती तो बहुत नाराज होती. पड़ोसिनें कभी उस की नाराजगी की परवाह करती, कभी न करती. एक बार मैं ने उन्हें आपस में कहते सुना—"क्यों री, इसे कितने नम्बर की लगेगी?"

मैं कुछ न समझी, भौंचक सी उन की ओर ताकती रही. उसी समय मैं ने अम्मा की दहाड़ सुनी—"बीना ! अक्ल भी है तुझ में?"

बीना से अम्मा खूब झगड़ी और उस दिन से उस का हमारे घर में आनाजाना बन्द हो गया.

मैं दिन भर घर में घुसी रहती. खाली बैठे जी न लगता तो अम्मा को काम में मदद करती. रोज एक न एक चीज मेरे हाथ

से गिर कर टूटती और टूटती. अम्मा झिड़कती—"एक जगह बैठी रह मरी!"

लेकिन अकेले मे बैठते ही मैं नासपातियों के बारे में सोचने लग जाती जो अब मुझे बहुत खतरनाक लगने लगी थी.

"क्यों अम्मा,"—मैं ने एक दिन पूछा. यह सवाल मेरे मन में कई दिनों से घुट रहा था—"बीनाजी उस दिन क्या कह रही थी?"

"चुप निगोड़ी!"

मैं चुप हो गई. काम करतेकरते अम्मा के हाथ रुक गए और उस की आखें मेरी नासपातियों को घूरने लगी...मानो वहा से कपड़े हट गए हों...मैं हडबड़ा गई. अपने आप मेरे हाथ उठ कर नासपातियों को छुपाने की चेष्टा करने लगे. अम्मा आगे बढ़ी और जैसा कि अब वह मुझे चूमने के पहले किया करती थी, वह काफी देर तक मेरे कन्धे पकड़े चुप खड़ी रही, फिर चूम लिया—एक बेकार सा चुम्बन!

कई दिनों की पेशोपेशी के बाद अम्मा ने समझौता कर लिया —उसी दिन मैं बीनाजी की बात भी समझ गई—मुझे अम्मा ने अंगिया पहनाई. मुझे बडी शर्म आई. इतनी सी मैं बच्ची...अंगिया की दोनों पट्टियां मेरे कन्धो से सरक कर नीचे उतर जातीं. मैं उन्हें ठीक करती और तुरन्त मुझे उन की याद आ जाती जिन्हें मैं भूलना चाहती थी.

अब मैं छोटीछोटी बातों के लिए पिटने लगी थी. कांच की कोई चीज फूट जाती, मैं पिटती. कभी चोरी से अंगिया उतार देती, मैं पिटती. अब मेरे स्वभाव में जिद आती जा रही थी. मार से मैं डरती नहीं थी, किसी को भी जवाब देने में भी मुझे झिझक न होती थी. कई बार जान बूझ कर मैं बेशर्मी से अपनी नासपातिया, जो अब

और फूलने लगी थी, उघाड दिया करती. अम्मा कपड़े ठीक करती और धमधम मारती लेकिन मार खा कर मेरा शरीर अब पक चुका था.

"मेरी शादी कर दो."—एक दिन मैं ने अम्मा से साफसाफ कह दिया.

होंठ चबाते हुए अम्मा ने कहा—"अभी छह साल की देर है."

"मगर मैं जवान..."

अम्मा ने मेरे मुह पर हथेली दबा दी.

रात को उस ने एक कपड़े से नासपातियों को कस कर पीठ के साथ बांध दिया. रात भर मैं जागती रही. कई बार मैं ने कपडा खोलने की कोशिश की लेकिन हर बार जागती अम्मा ने मेरे हाथ थाम लिए. दूसरे दिन जब कपडा खोला गया तो मेरे मांस में लाललाल धारियां पड गई थी लेकिन अम्मा ने जरा भी रहम न किया. फिर से कपड़ा बाध दिया गया और जब मैं नौकरानियों के सामने पड़ी तो वे मेरी नासपातियों को घूरने लगी—मेरी उभरी नासपातियां कपड़े के कारण दब गई थीं और यह नई बात थी.

मैं डर गई. मेरी उभरी नासपातियों की ओर नौकरानियों ने जितनी विचित्र निगाहों से देखा था उस से कहीं ज्यादा विचित्र निगाहों का सामना इस बार मुझे करना पड़ा. कल तक उठी चीजें आज दब गई थी. यह परिवर्तन था ही और मैं बौखला गई. मेरी आखे छलछला आईं. मेरे पैर कांपने लगे. वे नौकरारिया अभी भी मुझे गर्दन के नीचे घूर रही थीं मानो मेरा चेहरा अपनी जगह से उतर कर वहा आ गया हो.

दौड़ कर मैं अम्मा से लिपट गई. कपड़ा खोल देने के लिए मैं मिन्नतें करने लगी. अम्मा का चेहरा कठोर हो गया था. उस के चेहरे की हर रग कह रही थी—नहीं! फिर उस का निचला होठ दांतों के बीच में जा कर कटा...खून की एक पतली धार मैं ने वहां से उभरते देखी...